मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' के अंग्रेज़ी अनुवाद का भाषिक तथा सामाजिक विश्लेषण

एम.फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

शोध-निर्देशक

प्रो. चमन लाल

शोधार्थी

अभिषेक कुमार पटेल

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

2008

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
Centre Of Indian Languages
School Of Language, Literature & Culture Studies
NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 21/07/2008

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitled **"MANNU BHANDARI KE UPANYAS 'MAHABHOJ' KE ANGREZI ANUWAD KA BHASHIK TATHA SAMAJIK VISHLESHAN" (The Linguistic and Social Analysis of English Translation of Mannu Bhandari's Novel 'Mahabhoj")** by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

Abhishek.

Abhishek Kumar Patel
(Research Scholar)

PROF. CHAMAN LAL
(Supervisor)
Centre Of Indian Languages
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE & CULTURE STUDIES
NEW DELHI-110067, INDIA

PROF. CHAMAN LAL
(Chairperson)
Centre Of Indian Languages
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE & CULTURE STUDIES
NEW DELHI-110067, INDIA

GRAM : JAYENU, Tel: (91-011)] 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217 Fax: (91-011)26717603, 26717586

माँ के लिए . . .

ज़िन्दगी में जो कुछ है, जो भी है
सहर्ष स्वीकारा है,
इसलिए कि जो कुछ भी मेरा है
वह तुम्हें प्यारा है।
गरवीली गरीबी यह, ये गंभीर अनुभव सब,
यह विचार वैभव सब;
इसलिए कि पल-पल में
जो कुछ भी जाग्रत है, अपलक है-
संवेदन तुम्हारा है!!

- **मुक्तिबोध**

अनुक्रम

भूमिका i-iii

पहला अध्याय 1-32

क. मन्नू भंडारी का रचनात्मक व्यक्तित्व

ख. अनुवादिका रूथ वनिता का साहित्यिक परिचय

दूसरा अध्याय - 'महाभोज' का सामाजिक विश्लेषण 33-60

क. भारतीय राजनीति की समस्या और 'महाभोज'

ख. दलित चेतना और महाभोज

ग. उपन्यास में व्यक्त विभिन्न संघर्ष एवं मन्नू भंडारी का समाजिक चिन्तन

तीसरा अध्याय - 'महाभोज' के अंग्रेज़ी अनुवाद का भाषिक विश्लेषण 61-85

क. अनूदित उपन्यास में प्रयुक्त भाषा
संरचना/शैली/प्रभाव का विश्लेषण

ख. मुहावरे एवं लोकाक्तियों का तुलनात्मक विश्लेषण

चौथा अध्याय - महाभोज के अंग्रेज़ी अनुवाद के सन्दर्भ में सामाजिक, 86-102
सांस्कृतिक पदों के अनुवाद की समस्या एवं संबंधित विश्लेषण

उपसंहार 103-105

ग्रंथानुक्रमणिका 106-111

(i) आधार ग्रंथ
(ii) सहायक ग्रंथ
(iii) पत्र-पत्रिकाएँ
(iv) वेब संदर्भ

भूमिका

मन्नू भंडारी का 'महाभोज' अंतर्वस्तु के विस्तार का एक विस्मयकारी और अभूतपूर्व उदाहरण है। महिला-लेखक और लेखन की परम्परागत छवि को वह एक झटके से ध्वस्त करती हैं। भारतीय राजनीति के अमानवीय चरित्र पर इससे तीखी टिप्पणी मुश्किल है। भारतीय समाज में राजनीतिक जीवन में घुसपैठ करती मूल्य हीनता और तिकड़म को 'महाभोज' गहरी संलग्नता के साथ उद्‌घाटित करता है। आज राजनीतिक व्यक्ति समाज और साहित्य का सबसे बड़ा खलनायक है। दा-साहब के दोहरे व्यक्तित्व को, उनके अंदर के शैतान और ऊपर के सत-रूप को, मन्नू भंडारी ने आश्चर्यजनक विश्वसनीयता से साधा है। विसेसर, बिन्दा और हीरा उस दलित वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं जिनके शव पर राजनीति के गिद्ध मंडरा रहे हैं।

किसी उपन्यास की श्रेष्ठता उसकी भाषा की सर्जनात्मकता पर निर्भर होती है। महाभोज इस दृष्टि से बहुत ही उल्लेखनीय उपन्यास है। नाटकीय उपन्यास होने के कारण इसकी भाषा तनाव और व्यंग्य से संचालित है। 'महाभोज' की यह विशेषता जहाँ इसे एक उत्कृष्ट उपन्यास बनाती है वहीं अनुवाद के लिए एक चुनौती पूर्ण पाठ भी। यह 'महाभोज' की लोकप्रियता का प्रभाव ही कि इसका नाट्य रूपांतरण भी मन्नू भंडारी को करना पड़ा। इसके सफल मंचनों ने इसकी ख्याति को और बढ़ाया। 'महाभोज' का अनुवाद कई भाषाओं में हो चुका है। अंग्रेजी में इसका अनुवाद रूथ वनिता ने 'The Great Feast' नाम से किया है। यह अनुवाद कहाँ तक सफल रहा है, इसकी पड़ताल मैनें इस लघु शोध–प्रबंध में की है।

आज जबकि हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा में शामिल कर विश्व भाषा बनाने की बात की जा रही है तो इसके लिए सबसे जरूरी है हिन्दी साहित्य से वैश्विक स्तर पर लोग परिचित हों। यह कार्य तभी हो सकता है जब हिन्दी साहित्य का अंग्रेज़ी सहित विभिन्न भाषाओं में प्रभावशाली अनुवाद हो। 'महाभोज'

के अंग्रेज़ी अनुवाद पर काम करने का मेरा निर्णय हिन्दी साहित्य के अंग्रेज़ी अनुवाद की मूल समस्याओं को समझने से प्रेरित रहा है।

यह लघु शोध–प्रबन्ध 'महाभोज' के विशेषताओं के आलोक में उसके अनूदित पाठ के विश्लेषण का विनम्र प्रयास है। इसके विश्लेषण की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर मैंने इसे चार अध्यायों में बाँटा है।

पहला अध्याय 'मन्नू भंडारी का रचनात्मक व्यक्तित्व है, जिसमें मन्नू भंडारी के जीवन और व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों तथा इनके साहित्य का संक्षिप्त एवं आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। इसी अध्याय में महाभोज की अनुवादिका रूथ वनिता के रचनात्माक व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

दूसरे अध्याय 'महाभोज का समाजिक विश्लेषण' में महाभोज के मूल कथ्य को खोला गया है साथ ही इसकी सामाजिक उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है। उपन्यास में व्यक्त विचारों–भावों को ठीक से समझे बिना इसके अनुवाद का विश्लेषण करना बेमानी होगी।

तीसरा अध्याय 'महाभोज' के अंग्रेज़ी अनुवाद का भाषिक विश्लेषण है। इसके प्रथम उप अध्याय में जहाँ शब्द, वाक्य एवं शैली के स्तर पर अनुवाद की सार्थकता पर विचार किया गया है वहीं दूसरे उप अध्याय में लोकोक्ति एवं मुहावरों के अनुवाद की पड़ताल की गई है।

चौथा अध्याय है "महाभोज के अंग्रेज़ी अनुवाद के सन्दर्भ में सामाजिक–सांस्कृतिक पदों के अनुवाद की समस्या एवं संबंधित विश्लेषण।" इस अध्याय में हिन्दी भाषा के सामाजिक सांस्कृतिक शब्दों के अंग्रेज़ी अनुवाद पर विचार किया गया है।

शोधकार्य के दौरान जिस परामर्श; सहयोग और वैचारिक स्वातंत्र्य की आवश्यकता थी, ऐसा शोध–निर्देशक प्रो. चमनलाल जी के निर्देशन में ही पूर्णरूपेण संभव था। इनकी गहरी साहित्यिक समझ एवं अनुवाद संबंधित विशेषज्ञता ने मेरी राह आसान कर दी।

इनकी आलोचनात्मक टिप्पणी और स्नेह मिश्रित डांट सुनने में भी अपना ही आनंद है। इनके प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

जे. एन. यू. में एम. ए. और एम. फिल के दौरान प्रो. मैनेजर पाण्डेय, प्रो. चमनलाल प्रो. पुरूषोत्तम अग्रवाल, प्रो. वीर भारत तलवार, डॉ रणजीत साहा से साहित्य, विचारधारा एवं अनुवाद के बारे में पढ़ना निश्चय ही मेरे लिए एक परिवर्तनकारी घटना थी। इससे मेरी साहित्यिक एवं वैचारिक समझ विकसित हुई। मैं इन सभी गुरूजनों का कृतज्ञ हूँ।

मैं आज जहाँ हूँ, जैसा हूँ माँ के प्यार एवं प्रेरणा की बदौलत हूँ। उनके प्यार और विश्वास ही मेरी प्रेरणा है। स्वर्गीय सुरेन्द्र मामा के सपनों ने इस शोध में और बेहतर करने की शक्ति दी। मेरे हर सुख–दुःख को अपना समझने वाले अनुपमा दीदी एवं सुशील भैया को आभार व्यक्त करने की धृष्टता मैं नहीं कर सकता। शीतांशु के साथ बिना भावुक हुए विभिन्न विषयों एवं साहित्य पर होने वाली बहसों ने मुझे माँजा। सत्यार्थ सर की बौद्धिक प्रखरता ने भी काफी प्रभावित किया। सच कहूँ तो सत्यार्थ सर एवं वन्दना के सहयोग से ही अंग्रेज़ी संबंधी समस्याओं से निपट पाया।

कौशल, चन्दन, अमिष, सौरभ, नीलांबुज, शेफालिका, अंजू, जैसे मित्रों का साथ ने अधिगम की प्रक्रिया को काफी बोधगम्य बना दिया। शोधकार्य के दौरान मिले इनके सहयोग के लिए मैं हृदय से अभारी हूँ।

अजय और वन्दना का अपनापन विश्वास पैदा करता है।

शोधकार्य के दौरान बब्लूजी, दीपक, रत्नेश, अमित, विनोद भैया और बसावन मामा जी का भवनात्मक सहयोग हमेशा मेरे साथ रहा।

चन्दनजी ने बिखरे शब्दों और पन्नों को एक लघु शोध प्रबंध का आकार दिया, जिसके लिए उन्हें विशेष धन्यवाद।

अभिषेक कुमार पटेल

पहला अध्याय

क. मन्नू भंडारी का रचनात्मक व्यक्तित्व

ख. अनुवादिका रूथ वनिता का साहित्यिक परिचय

क. मन्नू भंडारी का रचनात्मक व्यक्तित्व

हिन्दी साहित्य साठ के दशक के बाद आमतौर पर मोहभंग की मानसिकता के अंतर्गत एक ऐसी अवस्था में था जहाँ बाहरी सामाजिक जीवन के स्थान पर व्यक्ति के आंतरिक जगत का मनोविश्लेषणवादी तथा अस्तित्ववादी विश्लेषण प्रमुख हो गया था। 1967 के बाद से भारतीय राजनीति में तेजी से स्थितियाँ बदलने लगी। इसी समय में जनवादी आंदोलन पैदा हुए तथा आपातकाल भी लगा। इस समय में मध्य वर्ग के चिंतन को छोड़कर समाज में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए। गरीबी और पिछड़ेपन की स्थितियाँ जातिवाद जैसी नयी स्थितियों से मिलकर भारत की दुर्दशा को और अधिक सघन बनाती रहीं। यह वही भारत है जिस पर मुक्तिबोध की नजर पड़ चुकी थी और 'अंधेरे में' कविता में वे इस गहरे अंधेरे पर टिप्पणी कर चुके थे। 'महाभोज' में ऐसी ही दृष्टि से अपने परिवेश की समग्रता को समझने का ईमानदार प्रयास किया गया है।

मन्नू भंडारी का जन्म अप्रैल सन् 1931 में मध्यप्रदेश के भानपुरा में हुआ था। उनके पिता श्री सुख सम्पत रास भंडारी 'हिन्दी पारिभाषिक कोष' के रचयिता थे। लेखन संस्कार उन्हें पैतृकदाय के रूप में प्राप्त हुआ। उनके व्यक्तित्व निर्माण में उनके घर के वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान रहा। घर के वातावरण और पिताजी के योगदान से उन्होंने सामाजिक कार्यों में बड़े उत्साह से भाग लिया। अपने साहसी व्यक्तित्व के कारण ही उन्होंने नारी के परंपरागत कोमल एवं अबला रूप को तोड़कर एक सशक्त नारी को अपने कथा साहित्य में स्थान दिया।

मन्नू भंडारी ने सन् 1950 के आस–पास लेखनकार्य आरंभ किया। सन् 1954 में उनकी पहली कहानी 'नया समाज' पत्रिका में प्रकाशित हुई, लेकिन इससे उन्हें अपेक्षित पहचान नहीं मिली। जिस कहानी ने लोगों का ध्यान उनके लेखन के प्रति आकर्षित किया तथा उन्हें पहचान दी, वह कहानी थी– 'मैं हार गई', जो सन् 1958 में 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई। सन् 1959 में मन्नू जी का विवाह हिन्दी साहित्यकार राजेन्द्र यादव से हुआ।

मन्नू भंडारी अपनी रचनाओं में बिना किसी वैचारिक पूर्वाग्रह के व्यक्ति एवं समाज की परतें खोलते चलती है। उन्होंने लिखा है "यह सच है कि मैं किसी पंथ से जुड़ी थी, न तब वाद में...मेरा जुड़ाव अगर रहा है तो अपने दश से...चारों ओर फैली–बिखरी जिन्दगी से जिसे मैंने नंगी आँखों से ही देखा है, बिना किसी वाद का चश्मा लगाए और मेरी रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं।"[1]

मन्नू जी ने स्वयं जिन–जिन भूमिकाओं में जीवन जिया अपनी कहानियों में उसका लेखा–जोखा प्रस्तुत किया। किन्तु उनके सृजन में सामाजिक जीवन में बिखरी नारी की भूमिकाओं के प्रति एक रचनात्मक दायित्व बोध भी बराबर बना रहता है। अपने नारी पात्रों को वे जिस सहजता एवं आत्मीयता से निभाती हैं वह बेजोड़ है। विविध रूपों में भारतीय नारी को समझने की कोशिश कहीं–न–कहीं खुद को ही सम्पूर्णता में समझने एवं निर्मित करने की कोशिश प्रतीत होती है। साहित्य की युगों पुरानी कथा–रूढ़ियों के मलबे के नीचे से नारी के मौलिक व्यक्तित्व का अन्वेषण और उसके चरित्र के यथार्थ निरूपण की कोशिश एक रचनाकार के रूप में मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण बनाती है। मौलिक इसलिए क्योंकि कथा साहित्य में अक्सर ही नारी का चित्रण पुरूष की आकांक्षाओं (दमित) से प्रेरित होकर किया गया है जबकि मन्नू जी नारी की निगाह से नारी की मानवी–मूर्ति

निर्मित करती है और महत्त्वपूर्ण इसलिए क्योंकि यह कोशिश वे स्वयं घर, समाज, व्यवस्था के उन तनावों एवं दबावों के बीच रह कर करती है, जिनमें एक आम भारतीय नारी जीती है। वे घर से समाज और समाज से घर को देखती हैं। अपने से दूर जाकर अपने और अपनों के दुःख–दर्द का आकलन एक मुश्किल लेखकीय धर्म है। मन्नू जी इसे निभाती हैं। यही वजह हैं कि उनके कथा–साहित्य में घर की हद बंदी से लेकर समाज व्यवस्था के कोने–कोने तक फैले उस शोषणजाल का बेहद बारीक विवरण मिलता है, जिसके बीच नारी का सुख सूखता जाता है, उसका व्यक्तित्व छीजता जाता है। भारतीय समाज के सन्दर्भ में नारी 'नारीत्व' को नकारने वाली शोषक व्यवस्था की बिल्कुल स्पष्ट समझ मन्नू जी में दिखती हैं, जो निस्संदेह नारी–मुक्ति–आन्दोलन को उनकी मूल्यवान रचनात्मक देन है।

"नारी मुक्ति आन्दोलन को भारतीय सन्दर्भ में एक बिल्कुल दूसरे ढ़ंग से देखना होगा। पश्चिम में रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, झूठी मान्यताएँ नारी के विकास को उस तरह तोड़ती नहीं जैसा हमारे यहाँ आज भी है। उनकी समस्या मानसिक रूप से पुरूष–निर्भरता से मुक्ति की समस्या है जबकि हमारे यहाँ सामाजिक–संस्कारों और रूढ़ियों से उबरने की या फिर दहेज, जाति, आर्थिक परतन्त्रता, शीलसुरक्षा, सतीत्व या 'भारतीय नारी' का बहुप्रचारित शिकंजा–और भी ऐसी अनेक रुकावटें हैं जो हमें खुला आसमान देखने ही नहीं देतीं।" (साक्षात्कार अजित कुमार, त्रिशंकु संग्रह। मन्नू जी के कथाकार व्यक्तित्व का समुचित मूल्यांकन इन रुकावटों की बेबाक समझ के क्रम में ही संभव है।

मन्नू भंडारी की कहानियों का मूल्यांकन करने के नाम पर ज्यादातर कथासार ही प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। कभी–कभार 'रूढ़ि विद्रोह कथानकों,

भाव–धरातल का चयन, स्वानुभूति की प्रमाणित सहजता, आदि विशेषताओं की गिनती भी की गई है, नहीं किया गया तो सिर्फ उस प्रश्न का रेखांकन जो इन कहानियों में गूंजते हैं। ये हमारे सोचने–समझने के तरीके की अप्रासंगिकता सिद्ध करते हैं और हमारे शालीन ढ़ोंग को उघाड़कर रख देते हैं। साथ ही ये भारतीय समाज–संस्कृति पर एक गंभीर टिपण्णी करते है। कोई भी कथाकार अपने लेखन में जितना कुछ कहता है उससे कहीं ज्यादा अनकहा छोड़ जाता है। मन्नू जी की कहानियों का विश्लेषण करते समय इस अनकहे की पहचान और उसकी सार्थकता का आकलन अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना उन आधारों की समझ अधूरी होगी जिन पर लेखिका का कथा–संसार निर्मित होता है, साथ ही उन जड़ताओं की भी, जिनसे मुक्ति की आकांक्षा भारतीय स्त्री की आकांक्षा है। मन्नू जी का कथा–संसार बेशक बहुत व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण नहीं है, तो भी अपनी सीमाओं में शक्ति संपन्न जरूर है। उसमें संवेदनशीलता और गहन–सम्बद्धता का अभाव कतई नहीं दिखता।

कहानियों की सामाजिकता

मन्नू भंडारी के अब तक पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं सर्वप्रथम कहानी संग्रह "मैं हार गई" सन् 1957 में प्रकाशित हुआ था। इसमें कुल बारह कहानियाँ हैं। 'ईसा के घर इंसान', 'गीत का चुम्बन', 'जीती बाजी की हार', एक कमज़ोर लड़की की कहानी', 'सयानी बुआ', 'अभिनेता' 'श्मशान' 'दीवार', बच्चे और बरसात', 'पंडित गजाधर शास्त्री' 'कील और कसक', 'दो कलाकार'।

इस संग्रह में अधिकांश कहानियाँ ऐसी हैं जो नारी–मनोभावों को अत्यंत सजीव ढ़ंग से व्यक्त करती है। चूँकि मन्नू भण्डारी की यह पहली

कृति थी। इसके कारण ही इसमें वैचारिक अन्विति और वैचारिक परिपक्वता का अभाव है, इसके बावजूद इसमें संकलित सभी कहानियाँ अपनी विशिष्ट छाप छोड़ती हैं।

'ईसा के घर इंसान' शीर्षक कहानी धार्मिक संस्कारों में फैले कुकृत्यों तथा धर्म की आड़ में चलने वाले नारी–शोषण का पर्दाफाश करती है। धार्मिक संस्थाओं में होने वाले कुकृत्यों पर व्यंग्य करती हुई यह कहानी अपनी संरचना में शोषण के खिलाफ आवाज उठाती है। एंजिला के ये शब्द इसी ओर इशारा करते हैं– "मैं अपनी जिन्दगी को, अपने इस रूप को चर्च की दीवारों के बीच नष्ट नहीं होने दूँगी। मैं जिन्दा रहना चाहती हूँ, मैं इस चर्च में घुट–घुट कर नहीं मरूँगी...।"[2]

'दो कलाकार' एक गढ़ी हुई कहानी होने पर भी रचना एवं कर्म की एकता पर बल देती है। जीवन में कर्म के प्रति चित्रा की तरह उदासीन रहने वाले लोग ही अंततः रचना में कलावाद का सहारा लेते हैं। चित्रा के चित्र 'कन्फ्यूजन' में अमूर्तन और प्रतीक–बहुलता को लेकर अरूणा की टिप्पणी प्रकारान्तर से नई कहानी में घुसपैठ करती इन प्रवृत्तियों के विरूद्ध ही एक टिप्पणी है। वास्तव में सच्चा कलाकार वही है जो जीवन के मर्म को समझता है।

'मैं हार गई' में मूल्यों के ह्रास के संकेत स्पष्ट है। मन्नू भंडारी की ये कहानियाँ लेखिका की सामाजिक चिन्ता का साक्ष्य बन सकी हैं जो उनके परवर्ती लेखन में वृहत्तर सन्दर्भों से जुड़ने की आकांक्षा के रूप में प्रतिफलित होती है। 'मैं हार गई' की कथा लेखिका निर्धन और सम्पन्न दोनों वर्गों से ही अपने नायक के निर्माण में असफल रहती है लेकिन अपने वर्ग के सम्पन्न नायक की अपेक्षा उसे विपन्न और साधनहीन नायक में ही संभावनाएं दिखाई

देती है। भाई–भतीजावाद के कारण निम्न वर्ग के नायक को नौकरी भी नहीं मिल पाती। यह नायक अपनी पूरी संभावनाओं के साथ कहानी में भले ही न उभर सका हो, लेकिन शीर्षक से संकेतित इस कथा–लेखिका की पराजय की स्वीकृति यह स्पष्ट कर देती है कि वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में उनके नियामकों से कोई आशा नहीं की जा सकती। अतः इसमें वर्तमान राजनीतिज्ञों पर कटाक्ष किया गया है।

'गीत का चुम्बन' कहानी आधुनिक युवती के मौन और अव्यक्त प्रेम की कुंठा को प्रस्तुत करती है, जो आधुनिक और प्राचीन परम्पराओं के बीच छटपटा रही है। कनिका निखिल से मैत्री पूर्ण संबंध स्थापित कर चुकी है, यह संबंध यौन भावनाओं से परे नैतिकता के स्तर पर है। एक दिन निखिल ने कनिका को बांहों में भरकर चूम लिया। तब उसने निखिल को एक चाटा मार दिया। अंततः निखिल माफी मांग कर चला जाता है। इस कहानी में लेखिका ने एक नये आदर्श एवं नैतिक बोध की स्थापना करने की चेष्टा की है। भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल पश्चिमीकरण का अंधानुकरण करने वाले निखिल के व्यवहार को कहानी के अंत में मन्नू जी ने औचित्य के स्तर पर ला दिया है। उसी के साथ कनिका के प्रभावशाली व्यक्तित्व को भावुक और भौतिक स्तर पर लाकर समय के प्रतिकूल सिद्ध कर दिया है। कनिका एक कमजोर लड़की मात्र सिद्ध हुई हैं।

'एक कमजोर लड़की की कहानी' एक नारी के उन अंतर्द्वन्द्वों और संस्कारों की जकड़नों को उभारती है जो पति के प्रति समर्पित होकर भी प्रेमी को भुला नहीं पाती। इस कहानी की नायिका 'रूप' वैचारिक धारतल पर परिस्थितियों से विद्रोह करती है, लेकिन व्यवहार में उसका यह विद्रोह कमजोर पड़ जाता है। 'रूप' का विवाह एक वकील से होता है लेकिन वह

अपने प्रेमी ललित को भूला नहीं पाती। ललित और रूप दोनों भाग जाने की योजना बनाते हैं। लेकिन पति के द्वारा मित्र की पत्नी के भाग जाने की खबर सुनकर वह अपना निर्णय बदल देती है।

लोग अच्छा कहें, इस भावना से प्रेरित रूप अपनी इच्छाओं का होम करने की ओर प्रवृत्त होती है। सामाजिक तिरस्कार न सह पाना उसकी कमजोरी है। लादे हुए निर्णयों के कारण मानसिक कमजोरी और स्वनिणर्य की अक्षमता का प्रतीक है 'रूप', जिसने अनेक बार निर्णय लेने का प्रयास तो किया, पर हर बार हारती गई।

'पण्डित गजाधर शास्त्री' एक चरित्र प्रधान व्यंग्यात्मक कहानी है। शास्त्री जी स्वंय को महान् साहित्यकार समझने लगते हैं। इसी आत्मप्रशंसा के भाव से वह समाज में हास्य का पात्र बन जाते है। हद तो तब हो जाती है जब शास्त्री जी विक्टर ह्यूगों के 'ला मिजरेब' का चोरी वाला हिस्सा ज्यों का त्यों लिखकर अपनी कहानी के रूप में प्रस्तुत करते है। इसके माध्यम से मन्नू भंडारी पाश्चात्य लेखकों की नकल कर कहानियाँ आदि लिखने वाले साहित्यकारों पर गहरा कटाक्ष करती हैं। आत्म प्रशंसा में लिप्त, आचार और विचारों में भिन्न गजाधर शास्त्री स्वयं ही लेखिक की कहानी के मुख्य पात्र बन बैठे।

'जीती बाजी का हार' कहानी में लेखिका स्पष्ट करती है कि नारी, पुरूष के प्रति अपने आकर्षण का दमन कर सकती है लेकिन हृदय के शाश्वत मातृत्व को नकार नहीं सकती। नलिनी, आशा और मुरला सहेलियाँ विवाह नहीं करती हैं और भोध कार्य में संलग्न कहती हैं, परन्तु जब आशा और मुरला भार्त के अनुसार इलाहाबाद में मिलती हैं तो मुरला आशा की पांच

वर्ष की लड़की उससे मांग लेती है। मुरला जीती बाजी हार जाती है। इस कहानी में लेखिका ने नारी–सुलभ भावनाओं का सुन्दर चित्रण किया है।

'तीन निगाहों की एक तस्वीर' मन्नू भंडारी का यह दूसरा कहानी–संग्रह है, यह कहानी संग्रह सन् 1959 में श्रमजीवी प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। इसमें आठ कहानियाँ संकलित हैं– 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'अकेली', 'अनथाही गहराइयाँ', 'खोटे सिक्के', 'घुटन', 'हार', 'मजबूरी', 'चश्में'।

'तीन निगाहों की एक तस्वीर' कहानी में तस्वीर दर्शना की है जिसे तीन निगाहें अपने–अपने ढ़ंग से देखती हैं, समझती हैं। ये तीन निगाहें हैं, नैना, हरीश और स्वयं दर्शना की। दर्शना ने विवाह के तुरन्त बाद टी. वी. से बीमार पति की सेवा करना शुरू किया, इस क्रम में दर्शना का ममत्व ही नहीं नारीत्व भी प्यासा रह गया। परिस्थितिवश वह हरीश की ओर आकर्षित हुई तो पति ने उसे मारा और घर से निकाल दिया। सहज मानवीय सम्बन्धों की तलाश में उपेक्षा और अवमानना का जीवन भोगते हुए वह आँख मूँद लेती है।

अन्य कहानी लेखिकाओं की तुलना में इनका कथा–फलक विस्तृत है। वस्तुतः इन्होंने भावुकता से हटकर बदले हुए जीवन–सन्दर्भ में खुले दिमाग से नारी जीवन की वास्तविकता को देखा–परखा और बड़ी सादगी के साथ व्यक्त किया है। 'अकेली' कहानी की सोमा बुआ अपने तात्कालिक परिवेश में जीने की अदम्य लालसा के साथ जी रही हैं। सोमा बुआ का मानवीय हृदय पूरे मुहल्ले को ही अपना परिवार मान लेता है परन्तु कोई उसे अपना नहीं मानता। वह सभी के सुख–दुःख को अपना सुख–दुःख समझती है। परन्तु आज की पूँजीवादी बाजार – व्यवस्था ने सामाजिक एवं परिवारिक मूल्यों को तार–तार कर दिया है। आज संबंधों की कीमत आर्थिक, सामाजिक एवं

राजनीतिक हैसियत के आधार पर आँकी जाती है सोमा बुआ दिन भर न्यौते की प्रतीक्षा में बैठी रहीं। रात हुई तो कहती हैं "क्या सात बज गये? फिर जैसे अपने से ही बोलते हुए पूछा, 'पर सात कैसे बज सकते हैं, मुहूरत तो पाँच बजे का था।.....और फिर बड़े ही बुझे हुए दिल से अँगीठी जलाने लगी।"[3] इस कहानी में वृद्धाओं के अकेलेपन को गहरी संवेदनशीलता के साथ रेखांकित किया गया है।

'खोटे सिक्के' कहानी मजदूरों की शोचनीय हालात की ओर संकेत करती है। कंपनी के लिए जान खपा देने वाले मजदूरों को कुछ हो जाने पर उन्हें दूध में पड़ी मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया जाता हैं। बुद्धिजीवी वर्ग उनकी दुर्दशा पर सहानुभुति का आँसू तो बहाता है परन्तु स्थिति में परिर्वतन के लिए कोई कदम नहीं बढ़ाता। 'खोटे सिक्के' की लक–दक फैशनेबुल किस्म की छात्राओं के लिए मजदूरों की दुर्दशा देखना महज तमाशे देखने के बराबर है। मन्नू भंडारी की इस यथार्थवादी दृष्टि को मधुरेश "प्रेमचन्द ओर यशपाल से प्राप्त रचना दृष्टि मानते हैं।"[4]

'मजबूरी' कहानी दो पीढ़ियों के वैचारिक संघर्ष की कहानी है। संघर्ष भावना और विचार का है। लेखिका ने समय के अंतराल से उत्पन्न स्थितियों और दृष्टिकोण को सामने रखा है। बूढ़ी अम्मा गाँव में रहती हैं बेटा रामेश्वर बहू एवं पोते के साथ बम्बई में रहता है। दूसरा बच्चा जन्म लेने के कारण बहू को पहले बच्चे को बूढ़ी अम्मा के पास छोड़ कर जाना पड़ता है। अम्मा बेटू से बहुत प्यार करती है परन्तु बेटू के कैरियर को लेकर चिंतित बहू चार साल बाद उसे बम्बई वापस ले जाती है, तो अम्मा का हृदय टूक-टूक कर रोने लगता हैं। फिर भी सबके सामने जताती हैं मानो वे इससे खुश है। यहाँ रोते हुए भी हँसने की मजबूरी है। इस कहानी के सन्दर्भ में मन्नू भंडारी ने

कहा था– "मन–प्राण से दूसरों के साथ जुड़ना वे फिर घर के हों या बाहर के इनकी मजबूरी है और जिससे जुड़े, उससे उपेक्षा पाना इनकी नियति। कहानी लिखते समय तो इन पात्रों की इस त्रास भरी नियति ने ही मुझे झकझोरा था, पर आज तो जैसे हर जगह, हर परिवार में किसी न किसी स्तर पर अकेलेपन की यह अनुगूँज सुनाई देती है।"[5] यहाँ पीढ़ियों के अन्तराल के कारण फालतू हो आए अकेलेपन का बोझ ढ़ोते माँ–बाप का सूक्ष्म मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है।

'चश्में' कहानी स्त्री, पुरूष सम्बन्धों के बीच गहराते द्वन्द्व का एक और पहलू स्पष्ट करती है। इसमें पति–पत्नी के सम्बन्धों में दूरियों का चित्रण किया गया है। मि० वर्मा हर वक्त अपनी फाइलों में उलझे रहते हैं। मिसेज वर्मा उनकी इस व्यस्तता से खीज उठती हैं और उनका मोटा चश्मा उतार कर रख देती हैं। मिसेज वर्मा की कहानी सुनते हुए वह दूसरी दुनिया में पहुँच जाते हैं। उनके और शैल के बीच प्रेम संबंध था। शैल को क्षय हो जाने पर मि. वर्मा ने उसका साथ छोड़ दिया। इस स्थिति को वह बर्दाश्त नही कर पाई और मृत्यु को वरण करती है। मि. वर्मा की यह बेबफाई उन्हें जीवन भर के लिए अपराध–बोध से ग्रसित कर देता है। इस टीसते नासूर की पीड़ा वे आजीवन अनुभव करते हैं। यहाँ मि. वर्मा के माध्यम से दोहरे जीवन जी रहे पुरूषों के अंतर्मन में झाँकने की सफल कोशिश की गई है। इस कहानी में परस्पर विरोधी स्वभाव वाले पति–पत्नी के बीच असंतुष्ट–जीवन को भी रेखांकित किया गया है।

'यही सच है' मन्नू जी का तीसरा कहानी संग्रह है, जो 1966 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसमें संकलित कहानियों में 'नशा' 'तीसरा आदमी','नकली हीरे, 'सजा','रानी माँ का चबूतरा','इन्कमटैक्स और नींद' तथा 'यही सच है,

नामक आठ कहानियाँ हैं। यहाँ लेखिका का शैल्पिक सौन्दर्य तो चरमोत्कर्ष पर है ही, साथ–साथ उन्होंने वृहत्तर आयामों और निर्वैयक्तिक दृष्टिबोध से समर्थ कलाकार होने का ही साक्ष्य दिया है।

'क्षय' कहानी परिस्थितियों से विवश कुंती की इच्छा और आदर्शों के क्षय की कहानी है। कुंती आर्थिक परिस्थितियों के कारण विवश हो जाती है और अपनी इच्छा के विरूद्ध जाकर वह सावित्री की अध्यापिकाओं से उसकी सिफारिश करती है। वस्तुतः यह कहानी मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक तंगी से विवश होकर टूटने की कहानी है। परिवेश के दबावों में आदर्श खण्डित हो रहे हैं और नायिका सोचने के लिए मजबूर हो जाती है कि क्या वह सचमुच कुछ गलत विश्वासों और खोखले आदर्शों को पाल बैठी है। जाहिर है कि आदर्शों एवं दबावों के बीच कुंती के व्यक्तित्व की टकराहट कहानी का कथ्य है।

'सजा' कहानी में एक ओर न्याय के विलम्ब पर मार्मिक व्यंग्य है, तो दूसरी ओर आर्थिक अभाव के कारण परिवार में आने वाले बिखराव का मर्मस्पर्शी चित्रण है यह एक ऐसे पिता की कहानी है जिस पर रूपये गबन का झूठा इल्जाम लग जाने की वजह से जेल जाना पड़ता है। नौकरी से हटने के बाद मुकदमा चलने पर रिहाई तो मिलती है, परन्तु तब तक पूरा परिवार ही सजा भुगत चुका होता हे। न्याय की इस विचित्र सी प्रक्रिया में फँस कर उन्हें जो कुछ भोगना पड़ा था उसका आघात वे सह नहीं पा रहे थे। इसलिए उन्हें रिहा होने की कोई प्रसन्नता नहीं थी। "पर पप्पा फिर भी वैसे ही रहे, मानों उन्हें विश्वास ही नहीं हो पा रहा हो कि उन्हें सजा नहीं हुई है।"[6]

मन्नू भंडारी ने अपनी कुछ कहानियों में मजदूर वर्ग की असहाय नारियों की दरिद्रता, संघर्ष और मानसिक विवशता एवं दृढ़ता का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है। 'रानी माँ का चबूतरा' ऐसी ही एक कहानी है। इस कहानी की नायिका गुलाबी अपने शराबी पति को घर से निकाल देती है और वह मेहनत करके बच्चों को पालती है। वह किसी के आगे हाथ नहीं पसारती। गांव की अन्य अंधविश्वासी औरतों की तरह रानी माँ के चबूतरे पर जाकर दुखड़ा नहीं रोती बल्कि अपने स्वाभिमान की रक्षा करती हुई अपने कर्म में लीन रहती है। वह इस पुरूषवादी समाज को बता देती है कि अगर स्त्री चाहे तो वह अकेले ही इस जीवन संघर्ष में विजय प्राप्त कर सकती है। वह अपने बच्चों के लिए जो त्याग, बलिदान एवं समर्पण करती है वे माँ की गरिमा को नई ऊँचाई प्रदान करते हैं वह बच्चों की खुशी के लिए भूखे रह कर रात–दिन परिश्रम करती है। उसे काम करते–करते बेहोश हो जाने पर "काका ने दीये के धीमे प्रकाश में पुड़िया को खोला तो देखा, काँच की दो छोटी–छोटी हरी चूड़ियाँ और शिशु–सुरक्षा केन्द्र की पाँच रूपये की रसीद थी।"[7]

दूसरों से जुड़ी घटनाओं को भी मन्नू भंडारी अपने भीतर जीती है, और इतनी शिद्दत से जीती हैं कि वे घटनाएँ उनका अपना यथार्थ बन जाती है। मन्नू जी के लेखन में जो ताजगी और धार मिलती है, उसका शायद यही रहस्य है।

'यही सच है' की दीपा की कहानी ऐसा लगता है स्वयं लेखिका का भोगा हुआ यथार्थ है। इस कहानी में इन्होंने नारी मनोविज्ञान और उसके आंतरिक संघर्ष को सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। इस कहानी में लेखिका ने नारी–मन में पुरूष के प्रति उत्पन्न भावों को डायरी शैली में व्यक्त

किया है। प्रेम त्रिकोण पर आधारित यह कहानी यथार्थ के इतना करीब है कि बसु चटर्जी ने 'रजनीगंधा' नाम से फिल्म तक बना डाला।

दीपा की पढ़ाई पटना में हुई जहाँ पर वह सहपाठी निशीथ से प्रेम करने लगती है, लेकिन तभी दीपा के पिता की मृत्यु के बाद उसकी निशीथ से अनबन हो जाती है और वह कानपुर शोधकार्य के लिए आ जाती है, यहाँ उसके जीवन में संजय प्रवेश करता है। दीपा दोनों में किसको चाहती है वह स्वयं नहीं जानती क्योंकि नीशीथ मन को शांति देता है तो संजय शरीर को। वर्तमान में जो उसे सुख देता है, वही क्षण दीपा की दृष्टि में सत्य है। ऐसा लगता है मन्नू भंडारी क्षण की अनुभूतियों को सच मानती हैं न कि चिरन्तर प्रेम की रोमान्टिक अनुभूतियों को। मन्नू भंडारी के पात्रों को कमजोर पात्र माना जाता है। यह कहानी भी एक कमजोर लड़की की कहानी माना जा सकता है और हमारे समाज में ऐसी कमजोर लड़कियों की कोई कमी नहीं है। इसी धरातल पर आकर मन्नू भंडारी की कहानियाँ विशुद्ध यथार्थवादी कहानी बन जाती है। दीपा परिस्थितियों के विरूद्ध संघर्ष नहीं कर पाती है। नई परिस्थितियाँ उसे प्रभावित कर अपने अनुसार मोड़ लेती हैं। उसका प्यार परम्परावादी रोमांटिक प्यार के समान न तो आदर्शवादी ही है, और न विरहवादी। उसका सरल और भोला भावुक मन वर्तमान को ही सत्य समझ अतीत से अपना पीछा छुड़ा लेने में किसी भी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं करता। संभवतः हिन्दी साहित्य में मन्नू भंडारी ने ही पहली बार अपनी इस कहानी के माध्यम से प्रेम की परम्परा से चली आती आदर्शवादी रोमाण्टिक इमेज को तोड़कर प्रेम के नितान्त यथार्थ और व्यवहारिक रूप का अंकन करने का साहस दिखाया था। डा. रघुवीर सिन्हा का मानना है कि "इस अर्थ में दीपा अपनी समकालीन अन्य कहानी–नायिकाओं से भी भिन्न है।

'परिन्दे' की लतिका से भी वह अलग है। विगत से चिपके रहने की लतिका वाली रोमांटिक जिद उसमें नहीं है।"[8]

इस प्रकार यह कहानी बीसवीं सदी की प्रेमिका के एक नये बदलते रूप–रंग की तस्वीर प्रस्तुत करती है। प्रेमिका की भूमिका ही नहीं बदलती है, उसे अर्थपूर्ण बनाने वाले सम्बन्धित मूल्य भी क्रमशः बदलते चले गए है। भावुक, रोमांटिक, आदर्शवादी, अमूर्त प्रेम मूल्य की जगह यथार्थवादी भौतिक–आत्मीय प्रेम ने ली है, जिसमें गहराई भी है और सम्प्रेषण भी। पहले के भावात्मक प्रेम की तरह वह मौन नहीं है। दीपा का 'यही सच है' का प्यार इसी परिवर्तित प्रेम मूल्य का अवश्यम्मावी बोध करता है।

'एक प्लेट सैलाब' मन्नू भंडारी का चौथा कहानी संग्रह है, जो सन् 1968 में प्रकाशित हुआ। यहाँ लगभग समस्त कहानियाँ नारी जीवन की समस्याओं से सम्बद्ध हैं। कहीं पति की सामाजिक प्रतिष्ठा हेतु स्वयं को तिल–तिल गलाती (नई नौकरी), कहीं रहस्यों को बन्द दराजों में छिपाकर जीती (बन्द दराजों के साथ), कहीं प्रेम में विफल, किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर अग्रसर होती (बांहों का घेरा), कहीं जीवन कमरों में समेटती और बिखेरती (कमरे, कमरा और कमरे) कहीं पति और प्रेमी–दोनों के साथ ईमानदारी से समर्पित होती नारी (ऊँचाई) इन कहानियों का केन्द्र–बिन्दु है। यह कहानी संग्रह लेखिका के लेखन के उत्तरोतर विकास का द्योतक है। इस संग्रह में कुल नौ कहानियाँ संग्रहित हैं– 'नई नौकरी' 'बंद दराजों के साथ','एक प्लेट सैलाब','छत बनाने वाले','एक बार और','संख्या के पार','बाहों का घेरा', 'कमरे कमरा और कमरे' तथा 'ऊँचाई'।

शिक्षित, आर्थिक रूप से स्वतंत्र फिर भी परिस्थिति के आगे समर्पण करने को मजबूर आज की आधुनिक स्त्री की स्थिति को उजागर करती हैं दो कहानियाँ 'नई नौकरी' और 'बन्द दराजों के साथ'।

'नई नौकरी' की रमा का व्यक्तित्व पुरूष प्रधान संस्कृति का शिकार है। पत्नी को पैसा घर, बच्चे देना ही उस को सुख में रखना है, यह मान्यता आज भी बरकार है। कुन्दन की नयी नौकरी ने उसके व्यक्तित्व को निखारा उसके अहं का पोषण हुआ। रमा की नयी नौकरी ने उसके अस्तित्व और व्यक्तित्व को उसकी इच्छा–आकांक्षा, बौद्धिक विकास सबको निगल लिया। एक अजीब–सी मानसिक और बौद्धिक गुलामी उसके पल्ले पड़ी। घुटन की शुरूआत हुई। नारी का यही तनाव और घुटन इस कहानी में चित्रित हुआ है। पुरूष अपनी आकांक्षा पूर्ति में पत्नी का साथ चाहता है पर पत्नी की इच्छाओं के अलग अस्तित्व की कल्पना भी वह नहीं करता। शिक्षित पत्नी उसके जीवन में एक शो–पीस है।

'बन्द दराजों के साथ' कहानी आज के तनाव को पूरी गहराई से आंकती है। "मनुष्य न तो छूटी हुई ज़िन्दगी को छोड़ पाता है और न चुनी जिन्दगी को अपना सकता है। दोनों ओर खींचा जाकर वह क्षत–विक्षत हो जाता है।"[9] मंजरी की मनोदशा इस कहानी में इसी प्रकार से चित्रित हुई है। विपिन के पर स्त्री संबंध के कारण मंजरी अपने बेटे असित के साथ अलग हो जाती है। फिर उसके जीवन मे दिलीप आता है परन्तु असित के स्कूल फीस को लेकर दिलीप और मंजरी के बीच पुनः अदृश्य दीवार खड़ी हो जाती है। मंजरी का जीवन नारीत्व और ममत्व के द्वन्द्व में बँट जाता है। मन्नू भंडारी के शब्दों में कहें तो "पुरूष एक तलाक शुदा स्त्री को स्वीकार करे तो अहसान और बच्चे के साथ स्वीकार करे तो इतना बड़ा अहसान कि जिसके

नीचे सांस ही घुटकर रह जाए। पति से मुक्त होने का साहस जुटा सकने वाली मंजरी इस मानसिकता से मुक्त नहीं हो सकी और फिर वही अकेली अधूरी जिन्दगी जीने की विवशता। यानी कि स्त्री साथ रहे तो अपने को स्थगित करके और अलग हो तो टूटी बिखरी जिन्दगी जीने को अभिशप्त।"[10] 'आप का बंटी' उपन्यास इस कहानी का विस्तार प्रतीत होता है।

मन्नू भंडारी की कहानियाँ बौद्धिक विलास नहीं है। वे तो उनके जीवनानुभवों की दास्तान है। राजेन्द्र यादव और मन्नू भंडारी का दाम्पत्य–जीवन तबाह हो रहा था। इसकी अनुगूंज इनकी कहानियों में भी सुनाई देता है। बतौर मन्नू भंडारी "इस सारे प्रसंग पर अपने को मीता की जगह रखकर मैंने 'एक बार और' तथा 'स्त्री सुबोधिनी' नाम से दो कहानियाँ भी लिखीं थी।"[11]

'एक बार और' कहानी में दर्शनशास्त्र की प्राध्यापिका बिन्नी बचपन की सहेली सुषमा के साथ गाँव में रहती है। बिन्नी कुंज के साथ बिना विवाह किए पत्नी की तरह रह चुकी है, लेकिन कुंज बिन्नी के सम्बन्ध बनाए रखते हुए भी मधु से शादी कर लेता है। अब सुषमा बिन्नी का संबंध नन्दन से जोड़ने की कोि ा ा करती है, परन्तु बिन्नी कुंज को भुला नहीं पाती और अन्तर्द्वन्द्व की शिकार हो जाती है। इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने नारी जीवन के प्रथम प्रेम–संबंध का महत्व बताया है। भारतीय स्त्रियां प्रेम की परिणति विवाह में चाहती हैं, वे प्रेम की अनुभूति को शाश्वत मानती है। इन मान्यताओं को जब ठेस पहुँचाती है तो नारी कैसे टूटने, जुड़ने की प्रक्रिया से गुजरती है, इसका यथार्थ वर्णन 'बिन्नी' के द्वारा लेखिका ने किया है।

'त्रिशंकु' मन्नू भंडारी का पाँचवा कहानी संग्रह है जो अपनी संरचना व संवेदना में अधिक प्रौढ़ ओर विषय–वैविध्य संपन्न कहानी संग्रह है। यह सन्

1978 में प्रकाशित हुआ था। इसमें संकलित कहानियों के आधार पर जाहिर होता है कि व्यंग्य और राजनीति पर मन्नू जी की पकड़ गहरी होती चली गई हैं। इस कहानी संग्रह में नौ कहानियाँ संकलित हैं। जिसमें 'आते–जाते यायावर','स्त्री सुबोधिनी','त्रिशंकु','तीसरा हिस्सा', 'शायद', 'दरार भरने की दरार', 'रेत की दीवार', 'अलगाव' तथा 'एखाने आकाश नाई' हैं।

'आते–जाते यायावर' कहानी एक तरफ तो पुरूष की यायावरी मानसिकता के प्रति मिताली जैसी पढ़ी–लिखी नारी के संयमित विरोध को उभारती है। वहीं दूसरी तरफ नरेन एक ऐसा चरित्र भी है जो मानसिक अस्थिरता के कारण कहीं टिक नहीं पाता। पुरूष की यायावरी वृति की शिकार मिताली बार–बार छली जाती है। पहले तो उसका सहपाठी उसके साथ यौन–संबंध बनाकर फिर दूसरे लड़की से विवाह कर लेता है। निराश और टूटी हुई मिताली नरेन से जुड़ती है, किन्तु नेरन ने मुस्कुराते हुए कहा 'इस आते–जाते यायावर का नमस्कार' मिताली फिर एक बार छली गई। शायद संवेदनशील स्त्री–हृदय ही उसकी कमजोरी है।

'स्त्री सुवोधिनी' कहानी में ऐसी स्त्री का चित्रण हुआ है जिसे अपनी और पुरूष की मानसिकता का बोध हुआ है लेकिन देर से। लेकिन अब वह समाज की अन्य मासूम युवतियों को पुरूष स्वभाव से अवगत कराना चाहती है। इसमें 'मैं' शैली का प्रयोग किया गया है। इसमें मैं के द्वारा लेखिका ने बताया हैं कि विवाहित पुरूष से प्रेम नहीं करना चाहिए। इस कहानी की मैं अंत में पहचानती है कि प्यार के नाम पर उसे छला गया है। शिंदे ने प्यार के आवरण में उसका शोषण ही किया, वह शिंदे के नये मकान में पहुँचती हैं तो देखती हैं "लम्बा चौड़ा आधुनिक ढ़ंग का मकान, बीवी और सुन्दर सा

आठ साल का बच्चा.....मैं इस अहसास के साथ कि प्रेम के इस खेल में वह एक सधे हुए खिलाड़ी की तरह खेला और मैं निहायत अनाड़ी की तरह।"[12]

'त्रिशंकु' कहानी में माँ और बेटी के दृष्टिकोणों के माध्यम से उन्होंने दो पीढ़ियों के अंतर को स्पष्ट किया है। इसमें बुद्धिजीवी की छद्म आधुनिकता पर व्यंग्य है। बड़ी–बड़ी बातें बोलना, खुद को खुले विचारों वाला दिखाना, निरंतर बहसों ओर चाय पीने में समय गुजारना इस वर्ग की पहचान है। तनु के माता–पिता इस बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो नारी स्वतंत्रता के समर्थक होने के बावजूद तनु का शेखर से मेल–जोल बर्दाश्त नहीं कर पाते। यहीं मम्मी के माध्यम से एक ऐसी नारी को चित्रित किया गया है जो आधुनिक और पुरातन के अंतर्द्वन्द्व में जीती हुई न तो आधुनिक हो पाती है और न ही परंपरागत। स्वयं मन्नू भंडारी के शब्दों में कहें तो "आधुनिकता और संस्कारों की ऊहापोह में फंसी, त्रिशंकु की तरह लटकी हमारी पीढ़ी की विडम्बना ही उजागर हुई है 'त्रिशंकु' में। कहानी में पक्षधरता कतई नहीं, बल्कि अपनी ही धज्जियां बिखेरने का एक तटस्थ विवेक है, जो अपनी सीमाओं से उबरने का संकेत भी करता है, सारी ऊहापोह के बाद विकास की दिशा में बढ़ता कदम–आज की वास्तविकता।"[13]

'तीसरा हिस्सा' आजादी के बाद समाज एवं राजनीति में आई मूल्यहीनता पर करारा प्रहार है। शेरा बाबू चले थे समाज को बदलने समाज ने उन्हीं को बदल दिया। वे पत्रिका निकालते हैं परंतु कर्ज में फँस जाते हैं। पारिवारिक जीवन बिखरने लगता है। योग्यता रहते हुए भी उन्हें उचित काम नहीं मिल पाता है। इस घुन खाये समाज की भ्रष्ट नौकर ाही और पथभ्रष्ट उच्च वर्ग की कोल खोलते हुए मन्नू भंडारी लिखती हैं "ऊँचे ओहदों पर पहुँचने के लिए दो ही लियाकत होनी चाहिए औरत में बड़े बाप की बेटी या

अफसर संग लेटी।"[14] समाज को देखने की यह सूक्ष्म दृष्टि मन्नू भंडारी को अन्य कहानी लेखिकाओं से अलग करती है और सामाजिक सरोकारों से जोड़ती है।

'अलगाव' कहानी में राजनीतिक हथकण्डों एवं कूटनीतियों का चित्रण है। 'बेलछी' हत्याकांड ने मन्नू भंडारी को काफी विचलित किया था। इस कांड को आधार बना कर मन्नू भंडारी ने 'अलगाव' कहानी लिखी और आगे चलकर इसको 'महाभोज' उपन्यास में रूपांतरित कर दिया। बिसू की लाश से गिद्धों को लगाव था। कारण वह उनके लिए महाभोज था। "चुनाव में सत्ताधारी पार्टी पर कीचड़ उछालने के लिए विरोधी पार्टी के लिए बिसू की लाश एक हथियार थी। लखन के विरोध में खड़े होने वाले जोरावर को चुप कराने के लिए दा साहब के लिए बिसू की लाश एक टूल थी। अपनी पदोन्नति के लिए सक्सेना के लिए वह एक सबूत था और मां–बाप के लिए सिर्फ लाश। डर के मारे हीरा से लेकर महेश तक ने उस लाश से कोई 'लगाव' नहीं दर्शाया अपितु गांव का हर कोई पुलिस–यंत्रणा से बचने के लिए 'लाश' से अलगाव बरतता रहा।"[15] आधुनिक राजनीति व्यवस्था पर मन्नू जी की यह कहानी जबरदस्त तमाचा है।

'अंकुश' और 'असामयिक मृत्यु' मन्नू भंडारी की उन कहानियों में से हैं जो किसी कहानी–संग्रह में तो नहीं परन्तु पत्रिकाओं मैं प्रकाशित हो चुके हैं।

अंकुश कहानी एक आधुनिक परिवार की अत्याधुनिक गृहिणी की कहानी है, जिसे अपने वृद्ध श्वसुर भी बोझ लगते है। पुराने संस्कारों से जिसे परहेज है, जिसकी आँखें नई रोशनी से चकाचौंध हैं। उसके किसी भी कार्य पर 'अंकुश' न लगाने पर भी मिसेज चोपड़ा को अपने ससुर 'अंकुश' लगाते जैसे लगते है किन्तु उसकी पुत्री को केवल उसका घर में रहना ही 'अंकुश'

प्रतीत होता है। आधुनिकता का दम भरने वालों के खोखलेपन पर मन्नू भंडारी ने करारा प्रहार किया है।

'असामयिक मृत्यु' कहानी मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियाों में से एक है। यह कहानी दीपू के कला रूप की असामयिक मृत्यु की कहानी है। उसके पिता महेश बाबू की मृत्यु होने से दीपू का अभिनय जीवन हमेशा के लिए समाप्त हो गया। घर की जिम्मेदारियों के बोझ तले एक प्रतिभाशाली कलाकार असामयिक मृत्यु का शिकार हो जाता है। यहाँ मध्यवर्गीय बिडंबना बोध भी उजागर होता है।

मन्नू जी के कृतित्व का दूसरा पक्ष उपन्यास साहित्य से सम्बद्ध है। एक श्रेष्ठ कहानीकार होने के साथ–ही–साथ उपन्यासकार के रूप में भी उनकी श्रेष्ठता असंदिग्ध है। अभी तक उन्होंने पाँच उपन्यासों की रचना की है जो क्रमशः एक इन्च मुस्कान (1961), 'आपका बंटी' (1971), 'महाभोज' (1979), 'कलवा' (बाल उपन्यास) और 'स्वामी' है। इनमें चार उपन्यासों को छोड़ पाँचवें उपन्यास 'कलवा' को बाल उपन्यास कहा जाता है। इनका उपन्यास 'स्वामी' बंग्ला के प्रसिद्ध कथाकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की एक कहानी पर आधारित फिल्म स्क्रिप्ट ही है। उस पर 'स्वामी' नाम की फिल्म भी बन चुकी है। इस तरह देखा जा सकता है कि इनके मौलिक एवं प्रौढ़ उपन्यास 'एक इन्च मुस्कान', 'आप का बंटी' और 'महाभोज' तीन ही हैं।

(1) **एक इंच मुस्कान**– मन्नू भंडारी और राजेन्द्र यादव के सहयोग का परिणाम है यह उपन्यास जो एक प्रेम त्रिकोण की सृष्टि करता है। यह उपन्यास अमर, रंजना व अमला को केन्द्र में रखकर चलता है। अमर कलाकार है और रंजना उसकी सहधर्मिणी। प्रेम की ट्रेजिडी यह है कि अमर अपनी प्रेरणास्रोत अमला को मानता है। विडम्बना यह है कि दाम्पत्य जीवन

का सुख प्राप्त करने के लिए रंजना हर स्तर पर त्याग करती है लेकिन पति की अर्धांगिनी होने की आकांक्षा उस तक ही सीमित रह जाती है। उपन्यास गहरा विषाद छोड़ते हुए एक नया मोड़ तब लेता है, जब रंजना चली जाती है और अमर दुविधाग्रस्त हो जाता है। प्रेम को द्वि–सूत्री आयामों मे फँसा अमर न तो रंजना को विस्मृत कर पाता है और न ही अमला को अपनाने का साहस कर पाता है। इसी तनाव मे वह नितांत एकाकी जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर हो जाता है।

सर्वप्रथम यह उपन्यास 'ज्ञानोदय' पत्रिका में धारावाहिक रूप में छपा था। उपन्यास के मुख्य पात्र 'अमर' को राजेन्द्र यादव चित्रित करते हैं तो मन्नू भंडारी ने 'रंजना' व 'अमला' स्त्री पात्रों को चित्रित किया है। यह उपन्यास कलाकार की असफलता को चित्रित करता है। अमर, प्रेम, पत्नी और कला किसी में भी सामंजस्य नहीं बिठा पाने के कारण हर तरफ से असफल सिद्ध होता है। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति इस उपन्यास की विशिष्ठता है।

(2) **'आपका बंटी'**– आठवें दशक में मन्नू भंडारी के उपन्यास 'आपका बंटी' का प्रकाशन साहित्य जगत की बड़ी घटना थी। इसका कारण यह था कि तलाकशुदा दम्पत्ति के बच्चों की समस्या को पूरे विस्तार से परखने का यह पहला मौलिक और उल्लेखनीय प्रयास था।

'आपका बंटी' में अकेलेपन से मुक्ति के लिए संघर्षशील नारी मन की व्याकुलता की पहचान का सफल प्रयास किया गया है। बंटी का अकेलापन और उससे उत्पन्न टीस–भरी जिन्दगी केवल किसी की व्यक्तिगत रूचि से नहीं बनी है, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण की उपज है। नारी की अकुलाहट, उसके जीवन की घनीभूत वेदना तथा दूसरों को पराजित करने वाली उसकी

TH-17843

इच्छशक्ति आधुनिकता बोध से बनी है। आधुनिकता सामाजिक बदलाव की उपज है। अतः 'आपका बंटी' की समस्या जितनी मनोवैज्ञानिक है उतनी ही सामाजिक भी है।

इस उपन्यास के लगभग सभी पात्र भीतर से टूटे हुए हैं परन्तु जीवन से भागते नजर नहीं आते। ये पराजित मानसिकता के पात्र भी नहीं हैं। केवल पस्ती ने इनके जीवन को घेर लिया है। साहसी मन नया संतुलन बनाना चाहता है। इसलिए इसके सभी पात्र अपने परिवेश से जुड़े रहने के लिए सक्रिय एवं सचेष्ट हैं। बंटी और शकुन डॉक्टर जोशी एवं अजय अपने टूटेपन के अहसास को समाप्त करने मे लगे हुए है। सच पूछा जाए तो इस उपन्यास के सभी पात्र आत्मान्वेषण का प्रयास करते दिखते हैं। इस उपन्यास के पात्र अकेलेपन से व्यथित हैं। उनके अकेलेपन की प्रत्येक स्थिति का बड़ा ही सूक्ष्म और व्यवस्थित नियोजन किया गया है। अकेलेपन के अहसास की तीक्ष्णता को नियोजित करने के लिए पात्रों के आपसी लगाव का भी समायोजन किया गया है। आपसी सम्बन्धों की घनिष्ठ स्थितियों के माध्यम से ही अकेलेपन की रिक्तता और यंत्रणा को दिखाया गया है।

इस उपन्यास में शिशु मन की परख की सफल एवं कलात्मक चेष्टा की गयी हैं। शिशु–मानस की पहचान का प्रयास 'शेखरः एक जीवनी में भी किया गया है। किन्तु शेखर का शिशु–मानस जीवन की स्वाभाविक स्थितियों के आलोक में नहीं देखा गया है, बल्कि मनोवैज्ञानिक कसौटियों के सन्दर्भ में देखा गया है। 'आपका बंटी' में शिशु–मानस के विश्लेषण में मनोवैज्ञानिक तथ्यों की अपेक्षा जीवन की सहज स्थितियों और सामाजिक परिवेशों का अधिक उपयोग किया गया है। बंटी के बाल सुलभ मन की जटिलता को परिवेश की समग्रता से जोड़कर अधिक सार्थक बनाया गया है। निश्चय ही

हिन्दी के उपन्यासकार शिशु–मानस की परख में मन्नू भण्डारी से काफी पीछे रह गये हैं। क्योंकि इसमें शिशु–मानस की अभिव्यक्ति में जितनी स्वाभाविकता है, उतनी ही कलात्मकता भी।

अन्य बालकों की अपेक्षा बंटी अधिक संवेदनशील है। उसकी बाल–सुलभ जिज्ञासा को माता–पिता का तनावपूर्ण और उलझा हुआ व्यक्तित्व अधिक कुंठित करता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह भी अहमी व्यक्ति बन जाता है। माता–पिता की तरह वह भी दूसरे को पराजित करने तथा अपने को विजयी देखने में आत्म–सुख का अनुभव करता है।

बंटी अपनी आयु से अधिक समझदार लगता है। वह अत्यन्त गम्भीर समस्याओं का केवल सूक्ष्म विश्लेषण ही नहीं करता है, बल्कि उचित समाधान भी प्रस्तुत करता है। वह बड़ी बारीकी से डॉ. जोशी और अजय से अपने सम्बन्धों के अन्तर का विवेचन करता है। अपनी नई मम्मी को अन्ततः 'मम्मी' नहीं कहता बल्कि 'वे' कहकर ही काम चलाता है। बंटी डॉ. जोशी को अपनी मम्मी के साथ नग्न तो देखता है, परन्तु आश्चर्य है कि उसके जैसा संवेदनशील बालक इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं कर पाता। निश्चय ही बंटी के चरित्र का आवेग लेखिका की पकड़ से छूट गया नजर आता है।

वस्तुतः इस उपन्यास का मूल स्वर आधुनिकता के प्रभाव से स्त्री की सोच में आ रहे परिवर्तनों के साथ उसके द्वन्द्व एवं इसके कारण परिवार पर पड़ रहे प्रभाव को दिखाना है।

(3) **महाभोज**– 'महाभोज' उपन्यास आज के स्वार्थपरक राजनैतिक संघर्ष की झकझोर देने वाली एक एक ऐसी सच्चाई है जिसमें शोषक वर्ग के कुत्सित षड्यंत्रों दम घोंटने वाली स्थितियों तथा शोषित-वर्ग के हृदयस्पर्शी

संघर्ष का बड़ी निर्भीकता से चित्रण हुआ है। भारतीय राजनीति की दशा एवं दिशा के विशाल फलक को अपने संक्षिप्त कलेवर में समेटे यह उपन्यास अपने–आप में अद्वितीय है।

(4) **स्वामी**– मन्नू भंडारी का उपन्यास 'स्वामी' महान कथाशिल्पी शरत् बाबू की कहानी 'स्वामी' से प्रेरित है। आलोच्य उपन्यास 'स्वामी' की कथावस्तु उसके मूल लेखन के समय शायद निर्विवाद रही हो परन्तु आज तक आते–आते उसके निष्कर्ष के प्रति एक हलका–सा ही क्यों न हो विवाद उठ खड़ा हो सकता है। मीनी, उसका प्रेमी नरेन्द्र और पति घनश्याम के बीच की कहानी इस उपन्यास की कथावस्तु बनी है। मीनी का सहपाठी नरेन्द्र है। वह उसका पड़ोसी भी है। दोनों के बीच में अनुराग की सहज भावना है। उस अनुराग को पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने सहवासजन्य प्रेम का बहुत ऊंचा दर्जा दे रखा है। यदि इन दोनों को ही एक दूसरे के जीवन–साथी होने का अवसर मिलता तो शायद कहानी ही नहीं बनती। नियति को यह स्वीकार्य नहीं होता। मीनी अपने मामा के तय किए हुए रिश्ते के अनुसार घनश्याम के साथ वैवाहिक बंधन में बंध जाती है। परिणामतः मीनी के अतःकरण में अपने पति के प्रति किसी तरह की अनुराग–भावना नहीं उपजती। उसकी जगह उसके मन में अपने पति के प्रति एक क्षीण–सा ही सही सहानुभूति–भाव जागता है। वह सहानुभूति–भाव घनश्याम के उस भलेपन की अनजाने में ही सही स्वीकृति है जो मीनी को अपने पति के साथ ही रहने का अंतिम निर्णय लेने पर बाध्य करती है। मीनी और घनश्याम के दाम्पत्य–जीवन में जो एक तरह का अलगाव–सा अनुभव होता है वह इन दोनों में से किसी एक के भी दोष अथवा अपराध के कारण उत्पन्न नहीं हुआ। नरेन्द्र के प्रति मीनी का सहज आकर्षण कुछ समय के लिए उसे अपने वैवाहिक बंधन को त्यागकर नरेन्द्र के साथ रहने के लिए प्रेरित करता है। परन्तु अंततः उसके अपने पति

की भलमनसाहत की शक्ति जीत लेती है और वह अपनी उस प्रेरणा को त्याग देती है।

आलोच्य उपन्यास मन्नू जी की मौलिक रचनाओं में नहीं रखा जा सकता परंतु हिन्दी में फिल्म बनाने वालों के आग्रह पर ही सही इस उपन्यास की उन्होंने रचना की। संयोगवश फिल्म भी अच्छी बनी, जिसके कारण 'स्वामी' के मूल कहानी लेखक शरत्चंद्र के साथ–साथ मन्नू जी का नाम भी लोगों की जबान पर चढ़ गया। स्वतंत्र रचना के रूप में कहानी की अपेक्षा लघु उपन्यास की पठनीयता अधिक होती है। इसलिए भी मन्नू जी का नाम उपन्यास के साथ जुड़कर अधिक व्यापक क्षेत्र तक पहुँच गया।

नाट्य रचनाएँ

मन्नू भंडारी ने दो नाटकों की रचना भी की है। जिनमें 'बिना दीवारों का घर' उनका मौलिक नाटक है और दूसरा 'महाभोज' का नाट्य रूपांतर है।

(1) बिना दीवारों का घर– मन्नू भंडारी की यह मौलिक नाट्य रचना 1966 ई. में प्रकाशित हुई थी। लेखिका ने इस कृति में उन तमाम परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है जो दाम्पत्य जीवन को असफल बनाने में भूमिका निभाती है। आधुनिक भाव–बोध वाला यह नाटक टूटते संबंधों की मार्मिक दास्तान प्रस्तुत करता है। दाम्पत्य–जीवन में विफल हुए दो वैवाहिक जोड़ों की यह संयुक्त कहानी है। शोभा और अजित तथा मीना और जयंत पति–पत्नी हैं। शोभा अपने चहारदीवारी में बंद रूप को त्यागकर कामकाजी नारी का रूप धारण कर लेती है। इस रूप–परिवर्तन के लिए अजित और शोभा की आर्थिक स्थिति बहुत हद तक जिम्मेदार है। वस्तुतः आर्थिक मोर्चे पर विफल सिद्ध होने की व्यथा पुरूष को उतनी ही टीसती है जितनी काम–क्षेत्र में अपने

पुरूषत्व के दुर्बल होने की भावना। शोभा अध्यापिका बनी और अध्यापिका से प्रिंसिपल। इसके लिए अजित के अंतर्मन से सम्मति भले ही न मिली हो परन्तु विवशता के कारण वह अपनी पत्नी के कामकाजी रूप को बदलकर फिर से गृहिणी के रूप में नहीं लौटा सकता। उसकी यह विवशता विकृति का रूप धारण कर शोभा के कामकाज़ी रूप की कटु आलोचना करने को उसे उकसाती है। इस विडंबना को पहले तो शोभा समझ नहीं पाती और फिर बर्दाशत नहीं कर पाती। फलतः दोनों के बीच दरार उत्पन्न होती है।

शोभा और अजित के बीच उत्पन्न हुई दरार को पाटने का प्रयास अजित की बहन जीजी करती है परन्तु वह प्रयास विफल हो जाता है। उन दोनों के बीच की दरार को पाटने की कोशिश करने वाले जयंत के प्रयास केवल विफल ही नहीं होते बल्कि उस दरार को और अधिक चौड़ा करने में सहायक होते हैं। इस विडम्बना के लिए जयंत के प्रयासों को कोई खोट नहीं बल्कि अजित की संशयवृत्ति कारणीभूत है। जयंत शोभा और अजित–दम्पति का अन्तरंग मित्र है। वह अपने मित्र–पत्नी के बीच सौहार्द–संबंध चाहता है, इसके लिए उन दोनों के बीच उभरनेवाले मतभेदों को समाप्त करने के लिए कभी–कभार शोभा के पक्ष का समर्थन भी करता है। उसका यह समर्थन अजित के मन में शोभा और जयंत के बीच अनुचित स्तर तक प्रगाढ़ संबंध होने की शंका जगाता है। विडंबना यह होती है कि अजित के हाथ से एक नौकरी निकल जाने के बाद उसके लिए दूसरी नौकरी का प्रबंध करने में शोभा और जयंत का संयुक्त प्रयास सफल हो जाता है। उस सफलता के प्रति अजित को जहाँ आभारी रहना चाहिए था वहां वह उस सफलता को शोभा और जयंत के बीच के अनुचित संबंधों के प्रमाण के रूप में मान बैठता है। अजित की इस चरम संशय वृत्ति के कारण शोभा को घर त्यागने पर विवश होना पड़ता है।

जयंत भी कोई दूध का धुला नहीं है। परंतु उसके नाजायज संबंध शोभा के साथ न होकर उसकी अपनी स्टेनों के साथ है। और यही संबंध मीना और जयंत के तलाक के लिए कारणीभूत होते हैं। इस प्रकार आधुनिक दाम्पत्य जीवन को विफल बनाने वाली दो प्रवृत्तियों को लेकर यह नाटक है– एक है पुरूष की चरम संशयवृति, जिसका प्रतिनिधित्व अजित करता है। दूसरी है पुरूष के अन्य स्त्रियों से अवैध संबंधों की अदम्य लालसा जिसका प्रतिनिधित्व जयंत करता है।

(2) 'महाभोज' (नाट्य रूपांतरण)– मन्नू भंडारी ने सन् 1983 में 'महाभोज' उपन्यास का नाट्य रूपांतरण किया। नाटक की संवादधर्मिता अत्यंत सुंदर बन पड़ी है। कतिपय काट–छाँट के बावजूद यह रचना अत्यंत सजीव और सफल ढंग से सामने उभरती है। संवाद चरित्रों के विश्लेषण करने में रोचकता लाने में पूर्णतः सक्षम है। इसकी कई सफल प्रस्तुतियाँ हो चुकी है।

बाल साहित्य

मन्नू भंडारी जी ने किशोरोपयोगी साहित्य की भी रचना की है। 'आँखों देखा झूठ एक ऐसी ही कहानी संग्रह है। जिसमें सात शिक्षाप्रद कहानियाँ संकलित हैं। 'कलवा' एक बाल उपन्यास है।

(1) कलवा– मन्नू भंडारी का सन् 1971 में प्रकाशित यह उपन्यास पंचतंत्र पर आधारित है। यह अपनी संरचना में उपेदशात्मक उपन्यास है, जो बड़ों को भी अच्छी शिक्षा प्रदान करता है। 'कलवा' चमार का बेटा है, जो परिश्रमी व ईमानदार भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करता है। उसकी परिश्रम में इतनी आस्था है कि वह 'गीता' के पुरूषार्थ और कर्मण्यता का यथार्थ प्रतीत होता है। कलवा का स्वप्न है कि वह समाज में समानता की स्थापना करें। उसका

यह स्वप्न उसकी मेहनत, ईमानदारी व सत्यप्रियता के कारण सच भी होता है। वह पूरे राज्य को ही स्वर्ग बना देता है। इस प्रकार यह उपन्यास बच्चों व बड़ों को सीख प्रदान करता है।

(2) आँखों देखा झूठ– यह किशोरोपयोगी कहानी–संग्रह 1976 में प्रकाशित हुआ था। इसमें सात शिक्षाप्रद कहानियाँ संकलित हैं।

'संकट की झूठ' एक किसान की चतुरता की कहानी है, जो यह शिक्षा देती है कि बल से अधिक बुद्धि कार्य करती है। 'आवाजों' भीर्षक कहानी यह शिक्षा प्रदान करती है कि निर्भयता से ही आदमी अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। 'आँखों देखा झूठ' राजा और रानी के अधैर्य से उत्पन्न हुई कठिनाइयों की कहानी है। 'दुर्भाग्य की हार' राजकुमार रणवीर की मेहनत और लगन की कहानी है। 'नहले पे दहला' शीर्षक कहानी में लेखिका बतलाती हैं कि दुनिया मे सिर्फ भलाई ही काम नहीं आती, बल्कि जैसे को तैसा वाला ही व्यवहार करना पड़ता है।

यह मन्नू जी की कई रचनाएँ पुरस्कृत हो चुकी हैं ओर कई का अनुवाद देशी–विदेशी भाषाओं में हुआ है। पंजाबी में उनकी बीस कहानियों का अनुवाद करके एक संकलन भी निकाला गया है। उनके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'आपका बंटी' का अनुवाद गुजराती, मराठी तथा अंग्रेजी भाषाओं में हुआ है। महाभोज उपन्यास का उन्होंने नाट्य रूपांतर किया तथा इस उपन्यास का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। 'बिना दीवारों के घर' नाटक भी सफलता पूर्वक मंचन किया जा चुका है। रेडियो समाचार सेवा बीबीसी, लंदन ने मन्नू भंडारी की रचनाओं पर 14 जुलाई 1982 को एक फीचर भी प्रस्तुत किया था।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि मन्नू जी का जन्म जिस स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में हुआ था और जिस परिवार परिवेश और संस्कार में वह पली–बढ़ी थी, उन सभी के सार्थक तत्वों को उनके संवेदनशील मन ने ग्रहण किया। परिवेश और संवेदना का जो तीव्र परिवर्तन था उनकी अभिव्यक्ति मन्नू जी की कृतियों में पूरे तीखेपन और मार्मिकता से हुई है। इनका समग्र साहित्य इनके सीधे–सादे और सच्चे व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करने वाला है। उसमें झाँकने वाले पाठक वर्ग को जब अपनी अनुभूतियों की छाया उसमें दिखाई देती है तो वेभाव–विभोर हो जाता है। महज सरल, आम, बोलचाल की भाषा से मानवीय अंर्तवृत्तियों को निरूपति करने में निश्छल, बेबाक अभिव्यक्ति से लेखकीय दायित्व का निर्वहन करने में, विसंगतियों और विद्रूपताओं को निष्पक्ष अभिव्यक्ति देने में मन्नू जी अन्यतम हैं। उनकी रचनाओं में उभरी समस्त समस्याएं सामाजिक समस्याएं हैं जिन्हें आधुनिक दिशाहीन और पथभ्रमित समाज का सशक्त चित्र स्वीकारा जा सकता है। आज भी मन्नू जी अपने सरोकारों के साथ साहित्य जगत में प्रासंगिक हैं।

ख. अनुवादिका रूथ वनिता का साहित्यिक परिचय

हिन्दी साहित्य जगत की प्रसिद्ध उपन्यासकार मन्नू भंडारी के प्रसिद्ध उपन्यास 'महाभोज' का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करने का श्रेय प्रसिद्ध लेखिका, संपादक व अनुवादक रूथ वनिता को है। अनुवाद जगत में इनका नाम आज भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। रूप वनिता का जन्म 1955 ई. में हुआ था। शिक्षा जगत में इनकी प्रसिद्धि एक कवयित्री, लेखिका, संपादिका और अनुवादिका के रूप में है। इनकी अधिकांश शिक्षा दिल्ली में ही पूरी हुई थी। महिलाओं और समाज को आधार–बनाकर दिल्ली से 'मानुषी' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन होता है, जिसकी संस्थापक सदस्यों में रूथ वनिता का भी नाम है। यही नहीं, वे 1979 से 1990 तक अर्थात् लगातार 11 वर्ष तक इस पत्रिका की सह–संपादिका भी रहीं।

रूथ वनिता की प्रसिद्धि एक विद्वान् अध्यापिका के रूप में भी है। 1976 से 1997 तक वे मिराण्डा हाउस और दिल्ली विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग से जुड़ी रहीं। यहाँ वे एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में रहीं। इस समय रूथ वनिता मोण्टाना विश्वविद्यालय में पढ़ा रही हैं।

रूथ वनिता एक प्रसिद्ध नारीवादी भी रही हैं। भारतीय महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर वे लगातार लिखती आ रही हैं। महिलाओं से संबंधित उनके अनेक लेखक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। यही नहीं, उन्होंने रचनाओं का अनुवाद किया है, उसके केन्द्र में कहीं न कहीं स्त्री है। प्रसिद्ध नारीवादी वर्जीनिया वुल्फ से वे गहरे रूप में प्रभावित थी। 'लेस्बियन और गे' जैसे वर्जित कहे जाने वाले विषय भी इनके अध्ययन व लेखन के केन्द्र में रहे हैं।

ज्ञातव्य है कि रूथ वनिता की प्रसिद्धि अनेक पुस्तकों की रचना व एक सफल अनुवादक के रूप में रही है। इन्होंने हिन्दी से अंग्रेजी में अनेक प्रसिद्ध

किताबों का अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त उनकी विलियम शेक्सपीयर, वर्जीनिया वुल्फ आदि पर बहुत सारे लेख भी विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी प्रमुख रचनाओं में 1996 में प्रकाशित Sappho and the Virgin Mary : Same-Sex Love and the English Literary Imagination व Gandhi's Tiger and Sita's smile : Essays on Gender, Sexual and Culture प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त वे वर्ष 2000 में प्रकाशित Same Sex in India : Readings from Literature and History की सहलेखिका है। इसके अलावा रूथ वनिता ने 2002 में प्रकाशित Queering India : Same-Sex Love in India - Culture and Society किताब का संपादन भी किया है।

रूथ वनिता की प्रसिद्धि एक अनुवादक के रूप में भी है। उन्होनें हिन्दी के अनेक उपन्यासों व कहानियों का अंग्रेजी में सफल अनुवाद किया है। इसमें राजेन्द्र यादव के उपन्यास 'सारा आकाश' का अंग्रेजी में अनुवाद– "Strangers on the roof' तथा मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' का अंग्रेजी में अनुवाद 'The Great Feast' प्रमुख है। इसके अतिरिक्त उन्होंनें विजयदान देथा के गल्प साहित्य का अंग्रेजी अनुवाद Dilemma and other stories नाम से किया हैं

यद्यपि यह सही है कि कोई भी अनुवाद अपने आप में पूर्ण नहीं कहा जा सकता, विशेषकर किसी साहित्यिक कृति का अनुवाद। उसमें कुछ न कुछ कमी रह ही जाती है। इसका कारण यह है कि अनुवादक के लिए मूल कृति– की गहराई तक पहुँचना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। फिर भी रूथ वनिता ने अपनी योग्यता व अनुभवशीलता के बल पर जिस तरह 'महाभोज' का अंग्रेजी अनुवाद किया है, वह निःसंदेह प्रशंसनीय है।

संदर्भ संकेत

---

[1] मन्नू भंडारी : एक काहनी यह भी, पृ. 63

[2] 'मैं हार गई' (कहानी संग्रह)-- मन्नू भंडारी, पृ. 17

[3] प्रतिनिधि कहानियाँ : मन्नू भंडारी, राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ. 37 (अकेली)

[4] कहानी का विकास, मधुरेश, सुमितप्रकाशन, 2004, पृ. 109

[5] दस प्रतिनिधि कहानियाँ : मन्नू भंडारी, किताबघर, 1994, पृ. 6

[6] प्रतिनिधि कहानियाँ : मन्नू भंडारी, पृ. 62

[7] प्रतिनिधि कहानियाँ : मन्नू भंडारी, पृ. 65

[8] हिन्दी कहानी का सफर– रमेशचन्द्र शर्मा, भारत प्रकाशन, सं. 1982, पृ. 67

[9] नयी कहानी : सन्दर्भ एवं प्रकृति : देवीशंकर अवस्थी, राजकमल, 2002, पृ. 222

[10] दस प्रतिनिधि कहानियाँ : मन्नू भंडारी, पृ. 8

[11] एक कहानी यह भी: मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण, 2007, पृ. 200

[12] प्रतिनिधि कहानियाँ; मन्नू भंडारी, पृ. 86

[13] प्रतिनिधि कहानियाँ; मन्नू भंडारी, पृ. 8

[14] प्रतिनिधि कहानियाँ; मन्नू भंडारी, पृ. 65

[15] कथाकार मन्नू भंडारी : अनीता राजूरकर नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1987, पृ. 69

दूसरा अध्याय - 'महाभोज' का सामाजिक विश्लेषण

क. भारतीय राजनीति की समस्या और 'महाभोज'

ख. दलित चेतना और महाभोज

ग. उपन्यास में व्यक्त विभिन्न संघर्ष एवं मन्नू भंडारी का समाजिक चिन्तन

आज उपन्यास जीवन से बिना जुड़े हुए नहीं लिखा जा सकता। इसका सम्बन्ध समाज से काफी गहराई तक होता है। जीवन–जगत को समग्रता में निरूपति करने के कारण ही उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा गया है। समाज के प्रति गहरे सरोकार एवं सूक्ष्म दृष्टि ही उपन्यासकार को रचना के लिए प्रेरित करती है, यही बात मन्नू भंडारी पर भी लागू होती है।

अब प्रश्न उठता है कि वो कौन–सी परिस्थितियाँ थीं जिसने मन्नू भंडारी को 'महाभोज' जैसे उपन्यास लिखने के लिए बाध्य किया। इसका संकेत स्वयं मन्नू भंडारी ने 'महाभोज की भूमिका में में दिया है– "जब घर में आग लगी हो तो सिर्फ अपने अंतर्जगत में बने रहना या उसी का प्रकाशन करना क्या खुद ही अप्रासंगिक, हास्यास्पद और किसी हद तक अश्लील नहीं लगने लगता ? संभवतः इस उपन्यास की रचना के पीछे यही प्रश्न रहा हो। इसे मैं अपने व्यक्तित्व और नियति को निर्धारित करने वाले परिवेश के प्रति ऋण–शोध के रूप में ही देखती हूँ।"[1]

आजादी के बाद की सबसे महत्वपूर्ण घटना या दुर्घटना इस सदी के आठवें दशक में घटित होती है जिसका असर हमारे समाज पर और हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर अभी तक कायम है। यह आजादी के बाद लगे आपातकाल की घटना है जिसमें एक तरफ सत्ता का निरंकुश चेहरा उभरकर सामने आया तो उसके विरोध में जनता का आक्रोश भी सड़कों पर आया। हिन्दुस्तान के गाँव और खेत–खलिहान शहर और मिलों की चिमनियों से एक नारा गूँज उठा 'सिंहासन खाली करो जनता आती है'। आपालकाल की घटना जहाँ जयप्रकाश को 'सम्पूर्ण क्रांति' का नारा देने को मजबूर करती हैं, वहीं साहित्यकारों के साहित्य सर्जना को भी एक नयी गति देती है। आजादी के बाद पहली बार कलम के सिपाही पैदा हुए जिन्होंने इसका हथियार की

तरह इस्तेमाल करते हुए सत्ता के निरंकुश चेहरे का परदाफाश किया और सोयी हुई जनता को जगाने का काम किया।

ऐसे बहुत से नाम हिन्दी साहित्य में मिल जायेंगे जिनकी लेखनी की धार बहुत तेजी के साथ आपातकालीन क्रूरता के खिलाफ सामने आई। भवानी प्रसाद मिश्र, नागार्जुन आदि इनमें से प्रमुख हैं।

उसी दौर की उपज होने के कारण 'महाभोज' का संबंध कहीं–न–कहीं प्रजातन्त्र के इस नाटक से जुड़ता है, जिसकी छानबीन जरूरी है, जरूरी इसलिए क्योंकि मन्नू भंडारी के रचनामानस में उस तथ्य की तलाश की जाए जिसने इस उपन्यास के लिए 'प्रेरणा भूमि' का काम किया। यह सवाल इसलिए भी उठता है कि इसके पहले मन्नू भंडारी ने अपने दो उपन्यासों में जिसका सन्दर्भ क्रमशः सामाजिक और पारिवारिक है अचानक ही इस उपन्यास में राजनीतिक क्यों हो गया? उपन्यास का विषय बदलने का एक कारण उन्हीं के शब्दों में "मैं इन दिनों एक राजनीतिक उपन्यास 'महाभोज' पूरा करने जा रही हूँ पिछले दिनों 'बेलछी काण्ड' जैसी घटनाओं ने मुझे काफी उत्तेजित किया। हमारे राजनीतिज्ञ नेता और भ्रष्ट–शासकीय मशीनरी जिस तरह से हमारी गम्भीर सामाजिक समस्याओं के साथ घिनौने राजनीतिक स्वार्थों के खेल खेलते हैं यह एक दर्दनाक दास्तान है। 'त्रिशंकु' में संगृहित मेरी कहानियाँ 'तीसरा हिस्सा' और 'अलगाव' में आपको इसका संकेत मिलेगा। मेरे मन का यही दर्द इस उपन्यास में गहरे ओर व्यापक रूप में छलका है।"[2] (27 मई 1979)

मन्नू भंडारी के इस कथन से यह जाहिर होता है कि बेलछी काण्ड जैसी क्रूर घटनाओं ने इन्हें काफी गहरे तक कुरेदा था। इसलिये 'महाभोज' उपन्यास को उसके संदर्भगत परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए जरूरी है कि बेलछी काण्ड को पूरी तौर से समझा जाए।

यह घटना राजनीतिक दृष्टि से जागरूक राज्य बिहार में घटित हुई थी। 1975 में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी ने देश पर आपातकाल थोपा तो बिहार में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में सम्पूर्ण क्रांति की बिगुल फूँकी गई। अंततः 1977 के चुनाव में कांग्रेस की हार हुई तथा जनता पार्टी की सरकार बनी। लोगों को लगा की सही मायने में आम जनता की सरकार बनी है। परन्तु ऐसा मानना उनका भ्रम था। दरअसल वे नेताओं के घाघपन को पहचान नहीं पाए।

जनता पार्टी के शासन काल के दौरान ही 27 मई 1977 को बिहार के पटना जिले के एक गांव बेलछी में चौदह हरिजनों की क्रूर हत्या कर दी गई। उसी इलाके के कुछ प्रभावशाली लोगों द्वारा यह काण्ड किया गया था। इस घटना का ब्यौरा देते हुए जून 1977 को 'नवभारत टाईम्स' ने 'पटना जिले में हरिजनों की नृशंस हत्या' शीर्षक से लिखा था.....दो बच्चों सहित 13 जिन्दा जला दिये– एक को गोली मार दी। नयी दिल्ली 3 जून (समा) पिछले महीने की 27 तारीख को बिहार में पटना जिले के एक गांव में एक हरिजन की गोली मारकर हत्या कर दी गयी और 13 अन्य को हाथ पैर बाँध कर आग में जिन्दा जला दिया गया। यह सनसनी खेज खबर एक अत्यंत विश्वस्त सूत्र द्वारा समाचार को आज यहाँ दी गई। हत्या करने वाले उस गाँव के आस–पास के कुछ ऐसे प्रभावशाली लोग बताए जाते हैं जिनका नाम ही बंदूकधारी पार्टी पड़ गया है। पिछले कुछ वर्षों से उन लोगों ने एक गिरोह के रूप में उस क्षेत्र में आतंक फैला रखा है। राजनीतिक दलों के कुछ प्रमुख नेताओं का प्रश्रय भी इन्हें इस बात के बदले मिलता रहा है कि चुनाव के समय वे उन नेताओं की मदद करें। यह घटना पटना जिले के बाढ़ थाने के बेलछी गांव में हुई थी। बताया जाता है कि 'बंदूकधारी पार्टी' के लगभग 50 सशस्त्र लोगों ने भरी दोपहरी में गाँव पर धावा बोल दिया। चालीस वर्षीय

एक हरिजन को उसके दरवाजे पर गोली मार दी, फिर लकड़ी और उपलों का जमाव करके उस पर डीजल छिड़क कर आग लगा दी पहले मृत हरिजन को उसमें फेंका उसके बाद दो बच्चों (9 साल, 13 साल) और 30 से 40 वर्ष की आयु के 11 अन्य लोगों को उनके घरों से घसीट कर हाथ पैर बांध कर एक–एक करके उस आग में फेंक दिया गया । जल रहे व्यक्तियों की चीख–पुकार पर उधर दौड़ पड़े उनके परिवारों के लोगों को पकड़ कर दूर भगा दिया गया।

आजादी के तीस साल बाद भी यह कैसी आजादी है ? अमीरों एवं दबंगों द्वारा गरीबों को कीड़े–मकोड़े की तरह मारने की आजादी नही तो और क्या है? वस्तुतः 'महाभोज' इसी पक्ष को रेखांकित करता एक मार्मिक उपन्यास है।

क. भारतीय राजनीति की समस्या और महाभोज

महाभोज की मूल समस्या राजनीतिक विकृति है। भारत की स्वाधीनता के बाद लोकतंत्र आया और लोकतंत्र धीरे–धीरे कैसे भीड़तंत्र में बदला, इस बिन्दु पर यह उपन्यास बार–बार प्रश्न उठाता है। भारत के इतिहास में लोकतंत्र के आने के बाद ऐसा पहली बार हुआ कि राजनीति सामाजिक जीवन की धुरी बन गई। लोकतंत्र की सफलता के लिए दो बातें आवश्यक हैं– सभी लोग इतने समझदार हों कि अपने हित–अहित को बारीकी से समझ सकें दूसरे वे अपने वास्तविक हितों के लिए एक–दूसरे से जुड़ सकें। भारत में जिस समय में लोकतंत्र आया वह आम भारतीयों के लिए अशिक्षा का दौर था। आम आदमी समानता, स्वतंत्रता, न्याय जैसे आधुनिक मूल्यों के प्रति प्रायः अनभिज्ञ थे, लोकतंत्र में किस प्रकार विवेकशील निर्णय लिए जाने चाहिए वह इन बातों से भी बेखबर थे। इसी स्थिति के कारण राजनीति में

संवेदनहीन अवसरवाद पैदा हुआ और एक अविश्वसनीय किस्म का दिखावटी नेतृत्व विकसित होने लगा।

यह उपन्यास कर्मयोग और गाँधीवाद की रामनामी ओढ़े हुए मुख्यमंत्री दा साहब की शतरंजी राजनीतिक चालों की गाथा नहीं है, बल्कि यह गाथा है– आज की मुखौटाधर्मी राजनीति के नीचे पिसती–घुटती दलित जनता की। स्वयं मन्नू भंडारी लिखती हैं कि "जनता सरकार के राज में घटी थी बेलछी की दिल दहला देने वाली घटना। किसी पत्रिका में मैंने हरिजनों को पेड़ से बाँधकर जिन्दा जला देने की क्रूरता और गाँव में फैली उस दहशत का, जिसने सबके मुँह पर ताले जड़ दिए थे– रोम–रोम को द्रवित कर देने वाला ऐसा वर्णन पढ़ा कि मैं ऊपर से नीचे तक थरथरा गई।.....पर कोई सार्थक रचना रची नहीं जा सकी सो चुप लगाकर बैठ गई.....पर कुछ समय बाद जब मुझे मालूम पड़ा कि हरिजनों को जलाने वाले व्यक्ति ने जेल से पैरोल पर छुटकर केवल चुनाव ही नहीं लड़ा बल्कि वह भारी बहुमत से जीत भी गया तो नजर इस त्रासदी के साथ–साथ चुनाव–केन्द्रित राजनीति पर टिक गई.....आज तो इसका वीभत्सतम रूप देखने को मिलता है। राजनीति की शतरंज पर आम आदमी तो शुरू से ही मोहरा भर रहा है, जिसका नाम लेकर ये खास आदमी शह और मात का घिनौना खेल खेलते आ रहे हैं। बड़ी निर्ममता और बेहयाई से ये इसकी जिन्दगी को भुनाते हैं। तो इसकी मौत को भी।"[3] वस्तुतः यह उपन्यास राजनीति के अपराधीकरण और अपराध के राजनीतिकरण के प्रथम चरण की गाथा है, जिसमें अपराधी प्रशासन और राजनीतिक सत्ता का एक मजबूत गठबंधन बनता हुआ दिखता है। 'महाभोज' से पूर्व ही रेणु ने 'मैला आँचल' में यह दिखाया था कि सत्ता के विभिन्न संस्थान स्वार्थ और आत्मोन्नति से कैसे ग्रस्त हैं। तमाम अवसरवादी और अमानवीय शक्तियाँ या तो सत्ता के शीर्ष पर पहुँच चुकी हैं या पहुँचने के

लिए होड़ कर रही हैं। अत्याचार की शिकायत करने पूर्णिया गया 'बावन दास' वहाँ जाकर देखता हैं– "पूर्णिया में जुलुम हो रहा है.....और जिला कांग्रेस पार्टी हो या सोशलिस्ट, सभी पार्टी समान हैं।"[4] रेणुजी ने इस उपन्यास में यह दिखाया है कि किस प्रकार कल तक ब्रिटिश सत्ता का साथ देने वाले अवसरवादी लोग आज कांग्रेस संगठन पर हावी होते जा रहे हैं, किस प्रकार राजनीतिज्ञों, तस्करों और प्रशासन का गठबंधन तैयार हो रहा है। मैला आँचल में राजनीति के अपराधीकरण की समस्या अंचल की समस्या है लेकिन 'महाभोज' तक आते–आते यह राष्ट्रीय समस्या के रूप में कर आती है। यदि विरोधी दल के नेता सुकुल बाबू अपनी सभा की सफलता के लिए लठैतों की सहायता लेते हैं तो सत्ता पक्ष के दा साहब जोरावर जैसे अपराधी को संरक्षण देते हैं। इन दोनों के बीच लोचन बाबू जैसे सिद्धांतवादी लोग अपने आप को विवश और असहाय महसूस करते हैं। अपराधियों और राजनेताओं के बीच का यह गठबंधन डी. आई. जी. सिन्हा और स्थानीय दरोगा जैसे अधिकारियों के माध्यम से उभरकर सामने आता है। बिंदा इस नापाक गठबंधन को बेपर्द करते हुए एस. पी. सक्सेना से कहता है– "जोरावर की रखैल इस थानेदार ने रिपोर्ट तैयार करके दे ही दी है, भरी सभा में दा साहब भी कह ही गए कि बिसु ने आत्माहत्या की है, 'मशाल' वालों ने छाप भी दिया, बस आप लोगों के लिए तो वह बात खत्म हो गई, पर मैं नहीं मान सकता, मरते दम तक नहीं मान सकता कि बिसु.....।"[5] सत्ता के इस चरित्र से, राजनीति के अपराधीकरण से बिन्दा परिचित है उसे बिसु की इस बात में विश्वास नहीं होता कि आगजनी के अपराधियों को पकड़वाने के लिए केन्द्र सरकार या किसी भी सरकार के यहाँ फरियाद की जाए। बिन्दा, सक्सेना से कहता है "जब सरकार ही सारी बात को दाब–ढाँक रही है तो मेरे–तेरे भाग दौड़ करने से क्या होगा ? जैसी यहाँ की सरकार वैसी दिल्ली की सरकार!

हमने तो सबकों देख लिया है साहब एक वह शराबी सरकार थी, अब यह पिसाबी सरकार.....ससुरे ऐसे।"[6] दूसरी आजादी के प्रतिनिधि मुख्यमंत्री दा साहब के शासन काल में बिसु की हत्या के मामले में बिंदा को फँसाकर झूठा केस तैयार करने वाले डी. आई. जी. सिन्हा को प्रोन्नत करते हुए आई. जी. बनाया जाता है जो प्रशासनिक अपराध के लिए पुरस्कार है। हरिजन–अग्निकाण्ड और बिसु की हत्या में सच्ची रपट तैयार करने वाले एस. पी. सक्सेना मुअत्तल कर दिए जाते हैं। यह उन तमाम् कर्त्तव्यनिष्ठ और ईमानदार नौकरशाहों के लिए एक चेतावनी है। बिसु की हत्या में बिन्दा को फँसाकर जोरावर को बचा लेना सत्ता द्वारा अपराधियों को दिये जाने वाले संरक्षण का प्रमाण है। दूसरी ओर, जोरावर को टिकट न देना अपराधी को राजनीति से दूर रखकर उन्हें राजनीति के लिए उपयोगी बनाए रखने की राजनीति है। आज किसी दल का जीतना उसके अच्छे कामों पर निर्भर नहीं करता, वह निर्भर करता हैं प्रशासन और अपराधियों के आतंक तथा कुछ खास वोट बैंक पर। आज राजनीतिक दलों के ध्यान में जनता नहीं, उसका वोट बैंक है और वोट बैंक की यह राजनीति समाज को विभाजित करने का काम करती है, जिसका खामियाजा अन्ततः जनता को भुगतना पड़ता है। दा साहब के लिए जोरावर सिंह सिर्फ अपराधी होने के कारण ही उपयोगी नहीं हैं, इसलिए भी है कि सरोहा के 35 प्रतिशत जाट मतदाताओं पर उसकी जर्बदस्त पकड़ है। स्पष्ट हैं कि महाभोज की पूरी कथा अपराधी, प्रशासन और राजनेता के बीच विकसित हो रहे मधुर संबंध की शिनाख्त करती है।

आजादी के तुरन्त बाद ही राजनीतिक नेताओं के चरित्र में राजनीतिक कुत्साओं के लिए जगह बनने लगी थी, लेकिन उन्हें नियम, कानून और सिद्धांतों की आड़ लेकर छिपाने की कोशिश होती थी। तब राजनीति में न तो नंगापन दिखाया जाता था और न ही खुलेआम अपराधियों की पीठ

थपथपानेकी निर्लज्जता। इस उपन्यास में दा साहब प्रत्यक्षतः अपराधिक गतिविधियों में संलग्न नहीं दिखते। उनका अपराध यह है कि वे अपराधियों को संरक्षण प्रदान करते हैं, लेकिन इसके लिए उन्हें आदर्शों और सिद्धांतों का सहारा लेना पड़ता है। उनके प्रत्यक्षतः नहीं जुड़े होने के बावजूद राजनीतिक पेंच के कारण उनसे उत्पन्न नहीं होते ये पैदा होते हैं, उनके नीचे के लोगों से, जिनके समर्थन की बदौलत वह सत्ता की राजनीति में सुकुल बाबू जैसे घाघ राजनीतिज्ञों को मात देने में सफल होता है।

इस उपन्यास में मन्नू जी ने सत्ता और दल–बदल की राजनीति को बेपर्द करने का काम किया है। दा साहब जिस दूसरी आजादी का नेतृत्व करते हुए सत्ता में आए थे, उस दूसरी आजादी की निरर्थकता अपनी पूरी कुरूपता के साथ उभरकर सामने आती है। इस पूरे उपन्यास के राजनीतिक चरित्रों में यदि लोचन बाबू को अपवाद स्वरूप छोड़ दिया जाए तो दा साहब अन्य राजनीतिज्ञों से बीस ही नहीं इक्कीस साबित होते हैं। ऐसा नहीं है कि दा साहब कोई कोरा पात्र हैं बल्कि वह भारतीय राजनीति के यथार्थ हैं। मन्नू भंडारी ने स्वयं ऐसे चरित्र को नजदीक से देखा एवं समझा था। उन्हीं के शब्दों में "दा साहब की भूमिका अदा करने के लिए किशोरावस्था में निकट सम्पर्क में आए और ताजिन्दगी राजस्थान की एक प्रमुख हस्ती के रूप में रहे असली दा साहब प्रकट हो गए।"[7] राव, मेहता, बापट जैसे राजनीतिज्ञ अपनी अवसरवादिता और स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण दा साहब को पाठकों की उस सहानुभूति का हकदार बना देते हैं, जिसके दा साहब हकदार नहीं हैं। इस उपन्यास के प्रतिपाद्य की मांग थी कि दा साहब के प्रति पाठकों में घृणा का संचार हो, लेकिन ऐसा हो नहीं पाता, क्योंकि आज हमारी राजनीति पूरी तरह से नैतिकता विहीन और मूल्यहीन हो गई है, जबकि दा साहब की राजनीति में कुछ मूल्य शेष बचे हैं। इस सन्दर्भ में दा साहब के विरोधियों और

असंतुष्टों की स्थिति ज्यादा निराशाजनक है। दा साहब तो, जहाँ शोला भड़कता है, वहाँ सिर्फ पानी डालने का काम करते है, वे पूरी उठा–पटक के बीच भी अपने को तटस्थ बनाए रखते हैं। वे जो वायदा करते हैं उसकों पूरा करते हैं और काम हो जाने पर न मुकरते हैं और न ही लात मार कर गिराने की कोशिश करते हैं। दा साहब कहते हैं– "मैं बहुत ऊँचे तक नहीं ले जा सकता, लेकिन जहाँ ले जाता हूँ, वहाँ खड़े होने के लिए कम–से–कम जमीन जरूर देता हूँ। मेरे साथ चलने वालों के सामने औध मुँह गिरने का खतरा कभी नहीं रहता।"[8]

यह ब्रात और है कि दा साहब की राजनीति में शेष रह गए मूल्य केवल उन लोगों के लिए हैं जो उनके समर्थक हैं, जो उनके काम आते हैं। ये मूल्य बिंदा, बिसु, सक्सेना जैसे व्यवस्था के शिकार चरित्रों के लिए नहीं हैं, जो अपराधियों की साजिश और सत्ता की राजनीति से तबाह हो जाते हैं। इस उपन्यास में दा साहब के चरित्र की विशिष्टता यह है कि अपनी तमाम नृशंसताओं और अमानवीयता के बावजूद दा साहब कहीं भी मानवघाती, शातिर, अपराधी राजनेता के रूप में उभरकर सामने नहीं आते।

'महाभोज' में दा साहब की जोड़–तोड़ और तिकड़म में माहिर बुद्धि, गीतावाद और गांधीवाद की अतिरिक्त उदारता और अतिजीवित सत्य के सांचे में लाकर सामंती अवशेषों और नव पूंजीवादी संपत्ति और सत्ता में डूबी शक्तियों को बेहिसाब संरक्षण देती है। वह लखन जैसे अयोग्य किन्तु अपने आदमी को आसन पर बिठा देने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। दा साहब की राजनीति जोरावर की गुंडागर्दी और लखन जैसे अयोग्य को संरक्षण देती हुई बिसु की मानवीय व्याकुलता को मार देने में तनिक भी नहीं हिचकती। उनकी राजनीति बिन्दा के मानवीय और संभावनाशील क्रोध की हत्या का अपराधी बना देने में अपनी बौद्धिक योग्यता का प्रमाण देती है तथा सक्सेना

जैसे ईमानदार और प्रशासकीय अनुशासन को अयोग्य बनाकर खारिज कर देने में जरा भी शर्म नहीं खाती। इस शक्ति ने मानवीय अंतर्वस्तु को चबाकर आदमी को बेबस और अकेला कर दिया। वस्तुतः बिसु और बिन्दा का अकेलापन और यातना दा साहब की इसी लोकतांत्रिक राजनीति की उपज है। इसी लोकतांत्रिक राजनीति का परिणाम है कि बिसु, बिन्दा और रूक्मा के अकेलेपन और यंत्रणा को शेयर करने वाला सक्सेना का उसी की स्थिति में पहुँच जाना। लेखिका ने उपन्यास के अन्त मे लोचन बाबू की मनः स्थिति को चित्रित कर यह दिखाया है कि दा साहब की राजनीति को लोचन बाबू जैसे सिद्धांतवादी एवं आदर्शवादी राजनीतिज्ञों को, जो वर्तमान व्यवस्था में लगातार अकेले पड़ते चले जा रहे हैं और उन्हें लगातार अपनी अप्रासंगिकता का अहसास हो रहा है, उस बिन्दु तक पहुँचा देती है जहाँ पाठकों को ऐसा प्रतीत होता है कि लोचन बाबू ठीक उसी प्रकार बिसु और बिन्दा का राजनीति संस्करण प्रतीत होते हैं, जिस तरह सक्सेना उनका प्रशासनिक संस्करण।

दा साहब की राजनीति का ढ़ंग भी उन्हें आज के राजनेताओं से अलग करता है। वे गीता के अनुशासन संरक्षक और समर्थकों के हित चिंतक के रूप में उभरकर सामने आते है। जहाँ कृष्ण ने अपराध का सहारा अपराधियों को समाप्त करने के लिए लिया था, मसलन कर्ण की हत्या करवायी, दुर्योधन की जंघा तुड़वाई और भीष्म एवं द्रोण से पांडवों को अलग करवाया, वहीं दूसरी तरफ दा साहब का अपराध अपराधियों को बचाने में है। इनके अपराध की जो फेहरिस्त बनती है, उससे भी ये मक्कार राजनेता प्रमाणित नहीं होते।

मन्नू जी ने दा साहब के चरित्र के जरिए लोकतंत्र के चौथे स्तंभ पत्रकारिता के स्वार्थपरक चरित्र को भी पाठकों के सामने उद्‌घाटित किया है। पाठक दा साहब को कहीं भी मशाल के संपादक दा साहब को निर्देश

देते हुए नहीं पाता, वह पाता है कि दा साहब तो निष्पक्ष और स्वतंत्र लेखन के लिए दत्ता साहब को प्रोत्साहित करते हैं। कागज का कोटा दुगुना करने और सरकारी विज्ञापन देने का आश्वासन देते हैं, लेकिन जब पाठक पाता है कि मशाल दा साहब की स्तुति करते हुए प्रकाशित होता है तो पत्रकारिता और सत्ता का गठबंधन पाठकों की नजर से ओझल नहीं रह पाता। दत्ता बाबू के सामने ही दा साहब डी. आई. जी. के समक्ष बिसु के हत्या के प्रकरण की व्याख्या करते हैं और इसकी स्वतंत्र एवं निष्पक्ष जाँच का आदेश भी डी. आई. जी. को देते है तो दत्ता बाबू के साथ साथ पाठक भी दा साहब की न्यायप्रियता का कायल हो जाता है लेकिन अगले ही पल वह पाता है कि उनकी व्याख्या और व्यवस्था के अनुकूल ही हत्या की रिपोर्ट बदलकर बिन्दा के माथे बिसु की हत्या की जिम्मेवारी मढ़ दी जाती है और जोरावर सिंह को बेदाग बचा लिया जाता है। यह सत्ता, नौकरशाही और अपराधियों के गठबंधन का नायाब उदाहरण प्रस्तुत करता हैं। इसके साथ ही लोकतंत्र में कानून की जटिलता उभरकर सामने आती हैं। बिन्दा कहता है–" बेगुनाहों को पकड़ने और गुनाहगारों को छोड़ने का कारण तो निकल ही आता है.....कानून और पुलिस के हाथ बहुत लंबे होते हैं– केवल गरीबों को पकड़ने के लिए।"[9] यही नहीं सुकुल की राजनीति का तो एक ही सिद्धांत है– "मारने वाले को शह दो और मरने वाले को हमदर्दी। यह सत्ता की राजनीति तो अंतर्विरोधों के प्रबंधन पर ही टिकी है और दा साहब से बेहतर इसका उदाहरण और कौन हो सकता है? इसी क्रम में बिसु हत्या कांड की निष्पक्ष जाँच कर रहे एस. पी. सक्सेना की मुअत्तली पाठकों को झकझोर कर रख देती है। लेकिन ये सारे अपराध दा साहब ने अपनी किसी व्यक्तिगत इच्छा की पूर्ति या लाभ के लिए नहीं कियें, वे न तो भाई–भतीजावादी हैं और न ही आज की तरह भ्रष्ट राजनेता। उन्होंने इस गंदी राजनीति से भी अपने को बहुत हद तक बचाए

रखा तो यह उनके चरित्र की उपलब्धि है और यह चरित्र उन्हें आज का राजनेता नहीं, वरन् छठे – सातवें दशक का राजनेता प्रमाणित करता है। जब दा साहब की पत्नी जमुना बहन उनसे कहती है– "तुम जैसे संत आदमी को सन्यास ले लेना चाहिए।"[10] तो इसी कारण पाठक दा साहब की भव्यता से अपने को प्रभावित पाता है। स्पष्ट है कि यदि दा साहब भ्रष्ट नहीं तो सीधे अपराधी भी नहीं हैं। इस उपन्यास में दा साहब शुरू से अंत तक निस्पृह बने हुए दिखते हैं, लेकिन यह भी तय है कि रचनाकार का उद्देश्य यह नहीं है कि दा साहब को निस्पृह बताकर दलित समस्या को दबा दिया जाए।

वस्तुतः महाभोज में अंतर्दृष्टिमूलक धुंधलापन है और इसी वजह से इसमें लेखिका का अभिप्राय कुछ और है और अभिव्यक्ति कुछ और वह बताना चाहती हैं कि राजनीति सत्ता पक्ष की हो या विपक्ष की, उसकी शक्ति उठ रहे फन को कुचलने में ही खर्च हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि पूरे उपन्यास में मन्नू भंडारी के अंतर्द्वन्द्व को अभिव्यक्ति मिली है, जिसमें एक ओर दा साहब के व्यक्तित्व के प्रति आकर्षण है तो दूसरी तरफ परिवेश के प्रति ऋण शोध वाले दायित्व का निरंतर अहसास। इस समूचे द्वन्द्व में अंततः दा साहब के प्रति आकर्षण मन्नू जी पर भारी पड़ता है। यही कारण है कि उपन्यास में दा साहब का व्यक्तित्व पर छत्तनार वृक्ष की तरह छा गया है एवं उनके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हो गई है। इसी कारण दलित उत्पीड़न बिसू और बिन्दा की त्रासदी न तो पूरी तीव्रता के साथ उभर पाती है और न ही यह उपन्यास की केन्द्रीय समस्या बनी रह पाती है। जबकि मन्नू भंडारी इसके विपरीत चाहती थीं। इसका संकेत उन्होंने अनिरूद्ध सत्यार्थ के साथ एक भेंटवार्ता में इन शब्दों में दिया था– "इस उपन्यास की उस बात को रेखांकित करूंगी कि 'बिसू की अग्निलीक' विद्रोह की उस भावना को आप

दबा तो सकते हैं, कुचल नहीं सकते। उसकी निरंतरता बनी रहती है। जब बिसू मरता है तो बिन्दा उभरता है, फिर एस. पी. सक्सेना। सारे अंधे और काले माहौल में भी विद्रोह की एक चिन्गारी रहती है। इतिहास विद्रोह की इस शाश्वतता का साक्षी है। मैं इसमें आज की बद से बदतर स्थितियों में भी गहराई से विश्वास करती हूँ।"[11]

ख. दलित चेतना और महाभोज

'महाभोज' की शुरूआत बिसू की मौत से होती है और इसका अंत बिन्दा की इस चीत्कार के साथ होता है कि– "मार डालो– मार डालो तूने बिसू को मार डाला, मुझे भी मार डालों, लेकिन देखना बिसू की इच्छा को कोई नहीं मार सकता।"[12] उपन्यास के बीच में जोरावर दा साहब से कहता है– "इसमें जिद्द की क्या बात हुई, दा साहब ? इन हरिजनों के बाप–दादे हमारे बाप–दादों के सामने सिर झुकाकर रहते थे, झुके–झुके पीठ कमान की तरह टेढ़ी हो जाती थी। और ये ससुरे सीना तानकर आँख में आँख गाड़ कर बात करते हैं। बर्दाश्त नहीं होता यह सब हमसे।"[13]

उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अंत तक यह दलित वर्ग नई चेतना और नई ऊर्जा से लैस होकर शोषक वर्ग के विरूद्ध निरंतर संघर्षरत् है और यह शोषक वर्ग राजनीतिक सत्ता और प्रशासन से खुलेआम समर्थन प्राप्त कर इस दलित चेतना को कुचल डालने पर आमादा है। हरिजन अग्निकांड होता है, अपनी मांगों और अधिकारों के प्रति हरिजनों में चेतना पैदा कर रहे बिसू को नक्सली बताकर जेल की सलाखों के पीछे डाल दिया जाता है, लेकिन बिसू का हौसला पस्त नहीं होता। जेल से निकलने के पश्चात एक बार फिर वह पिछड़े दलितों में जागरूकता पैदा करने के काम में जुट जाता है। दलितों के बीच शिक्षा के प्रसार के लिए वह विद्यालय चलाता है और अंततः जोरावर जैसे सवर्ण भूमिपति उसकी आवाज को दबाने के लिए उसे बेरहमी से कुचल डालते हैं, लेकिन बिसू की हत्या के बावजूद उसकी आवाज दब नहीं पाती और अब यह बिन्दा के माध्यम से अभिव्यक्त होने लगती है। बिन्दा की दलित चेतना, बिसू की तुलना में कहीं अधिक उग्र और मुखर है। वह सत्ता और व्यवस्था के चरित्र को समझ रहा है, इसीलिए जब–जब बिसू हरिजन अग्निकांड प्रमाण को लेकर दिल्ली जाने की बात करता है तो उसकी बिसू

से जोरदार बहस हो जाती है। उसमें आतंक के विरोध में सार्वजनिक बहस करने का साहस है। दा साहब की सभा में, बीच में उठकर वह कहता है– "अरे दा साहेब काहे यह नौटंकी कर रहे हो यहाँ ? हरिजनों को जिन्दा जला दिया गया और आपकी सरकार और आपकी पुलिस तमाशा देखती रही और महीने भर से खुद तमाशा कर रही है, हुआ आज तक कुछ?"[14] मानवीयता और गाँधीवादी मुखौटा धारण किए हुए दा साहब को बीच सभा में बेनकाब करते हुए कहता है कि हरिजनों की बस्ती जलाने वालों को आप भली–भाँति जानते हैं कि उनकी पहुँच सत्ता के गलियारों तक है। दा साहब अपनी कुटिलता और कूटनीति से पूरे प्रसंग को बदलना चाहते हैं और प्रश्न करते हैं कि प्रमाण क्या हैं? बिन्दा इसका जवाब देते हुए कहता है– "कौन देगा गवाही मरना है किसी को शिनाख्त करके? चार दिन यहाँ रह लीजिए..... पता चल जाएगा कि कैसा आतंक है।"[15] यह व्यवस्था अंग्रेजों की तरह मारती भी है और रोने भी नहीं देती। बिसू हरिजन अग्निकांड के प्रमाण को जुटा लेता है और दिल्ली जाना चाहता है, पर जा नहीं पाता क्योंकि दिल्ली जाने से पूर्व ही उसकी हत्या कर दी जाती है। जब बिन्दा पूरे प्रमाण जुटा लेता है तो बिसू की हत्या का झूठा आरोप लगाकर बिन्दा को ही गिरफ्तार कर लिया जाता है, लेकिन वह आवाज जो 'गोदान' के होरी और गोबर के माध्यम चली थी, 'मैला आँचल' के कालीचरण से होते हुए बिसू तक पहुँची थी, वह बिसू की हत्या और बिन्दा की गिरफ्तारी के साथ समाप्त नहीं होती, बल्कि कायांतरण करती हुई रूक्मा और सक्सेना की आवाज के रूप में परिणत हो जाती है। जब इन सूत्रों को मन्नू जी के इस समर्पण वक्तव्य "दुर्निवार सम्मोहन भरी उस ख़तरनाक लपकती अग्नि–लीक के लिए जो बिसू और बिन्दा तक ही रूकी नहीं रहती।"[16] के साथ जोड़कर देखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य दलित–उत्पीड़न की समस्या

है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य बिसू और बिन्दा की उस आवाज को जिन्दा रखना है जो लगातार शोषक शक्तियों के विरूद्ध संघर्षरत है और अपने अधिकारों के लिए कैसी भी कुर्बानी देने के लिए तैयार है। इस आवाज को अब दबाया नहीं जा सकता है, चाहे यह व्यवस्था जितना जोर लगा ले।

मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' में बिसू के शोषण और मौत के साथ राजनीतिक सत्ता की संबद्धता को उद्घाटित करते हुए, सत्ता की राजनीति को बेपर्दा किया है। सुकुल बाबू हरिजनों की राजनीति करते थे, लेकिन इन्हीं के मुख्य मंत्रित्व काल में वह जेल में डाल दिया गया। वह नक्सलियों और उनकी हिंसात्मक कार्यवाहियों का आलोचक था और शांतिपूर्वक दलितों को जागरूक करने के काम में संलग्न था। सुकुल बाबू के मुख्यमंत्रित्व काल का संबंध आपातकाल से था और उनके विरूद्ध 'दूसरी आजादी' का बिगुल बजाते हुए दा साहब सत्तारूढ़ हुए थे। इसी दूसरी आजादी के पुरस्कर्ता दा साहब के मुख्य मंत्रीतत्व काल में हरिजन अग्निकांड होता है, बिसू की हत्या होती है और बिन्दा की गिरफ्तारी होती है। इस पूरे काम मे सत्ता और प्रशासन अपराधियों को संरक्षण और प्रोत्साहन देती प्रतीत होती है, कहीं उसके पक्ष में खुले आम सामने आकर तो कहीं मौन समर्थन प्रदान कर। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने प्रश्न उठाया है कि जब लोकतंत्र के चारों स्तंभ अपनी भूमिका और जिम्मेदारी को व्यक्तिगत स्वार्थ से तय करने लगे और प्रजातंत्र लकवाग्रस्त एवं फासीवादी हो जाए तब बिन्दा जैसे लोगों की उस व्यवस्था में क्या भूमिका होगी ? बिसू तो नक्सलियों की हिंसात्मक कार्यवाही की निन्दा करता था, लेकिन ऐसी स्थिति में क्या बिन्दा की हिंसात्मक उत्तेजना ओर आँखों से निकलते अंगारे को नक्सल आंदोलन और उग्रवाद में परिवर्तित होने से रोका जा सकेगा?

लेकिन लेखिका ने संक्षिप्तता के आग्रह और दा साहब के व्यक्तित्व के प्रति आकर्षण के कारण इस समस्या को उपन्यास का केन्द्रीय विषय नहीं बनने दिया। दलित समस्या से जुड़ी हुई महत्त्वपूर्ण चरित्र जोरावर सिंह का था जो विस्तार की अपेक्षा रखता था। सक्सेना का चरित्र जो व्यवस्था का एक अंग है और बिसू एवं बिन्दा के स्वर को व्यवस्था के अंतर्गत ही जारी रखने में सहायक हो सकता था, उसे भी दिल्ली की ओर भेजने का संकेत देकर संक्षेप में निपटा दिया गया है। इन दोनों चरित्रों को विस्तार दिये जाने की अपेक्षा थी, लेकिन ऐसा नहीं किया जा सका। लेखिका रूक्मा और सक्सेना को दिल्ली की ओर उन्मुख कर 'दलित समस्या' के निदान का सूत्र उसी लोकतांत्रिक व्यवस्था और दिल्ली में तलाशती है, जिस पर बिन्दा का अविश्वास था। यहीं पर आकर 'महाभोज' में उभरी उग्र दलित–चेतना लदबदा कर दम तोड़ देती है क्योंकि दा साहब और विपक्षी दोनों पार्टियों की प्रकृति और चरित्र में कोई बुनियादी अंतर नहीं है। इसलिए रूक्मा और सक्सेना को दिल्ली भेजने का औचित्य समझ में नहीं आता, फिर भी यह इतना संकेत तो अवश्य देता है कि बिसू की शहादत और बिन्दा की उग्रता की परिणति से यह दलित–चेतना सहमी जरूर है, इसकी उग्रता में कमी अवश्य है, संघर्ष की गति धीमी जरूर हुई है, लेकिन यह संघर्ष चेतना समाप्त नहीं हुई है। इस संघर्ष चेतना की जिजीविषा, रूक्मा और सक्सेना में अब भी विद्यमान है।

इस उपन्यास में दलित–चेतना के दूसरे छोर पर हीरा जैसे पुरानी पीढ़ी के लोग हैं जो समझौते और अनुनय–विनय की परंपरा पर चलकर ही जीवन–यापन करना चाहते हैं। ये गोदान के 'होरी' की तरह पैर के नीचे गर्दन दबी रहने पर पैर के सहलाने में ही बुद्धिमानी समझते है। हीरा अपने घर में दा साहब के आने की प्रतिक्रिया इस रूप में व्यक्त करता है– "गाड़ी तक आकर हीरा बेचारा हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। .....दा साहब खुद

उसके घर आए, ऐसा मान न उसे जीवन में कभी मिला न आगे ही कभी मिलेगा।[17]" इतना ही नहीं दा साहब को तो वह देवता मानता है, क्योंकि उनके सत्ता में आने के बाद ही बिसू जेल से छूटा था। वह दा साहब के प्रति इसलिए भी उपकृत है क्योंकि बिसू की हत्या के बाद दा साहब उसके घर गए थे और जनसभा में मंचपर अपने पास बैठाया था। एस. पी. सक्सेना के समक्ष गवाही देते हुए वह कहता है– "अऊर दा साहेब तो देवता आदमी हैं सरकार हम गरीबन का कैसा मान देहिन, उ दिन हमारे घरे आ.....हमका अपने संग लिवा ले गए.....नहीं तो को पूछत है गरीबन को दुःख दर्द.....।" वे यहाँ तक आते– आते हीरा इस बात को भूल जाता है कि उसके घर पर दा साहब का आगमन उसके प्रिय बेटे बिसू की लाश पर ही संभव हो सका है और वह भी इसलिए कि सरोहा उपचुनाव मे सुकूल बाबू ने दा साहब के प्रत्याशी के विरूद्ध बिसू की हत्या को मुद्दा बनाया है।

वस्तुतः हीरा 'महाभोज' के रचनाकाल की उस दलित चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जो अभी हरिजन चेतना के दायरे मे सीमित थे और जो विश्वास करते थे कि गांधीवादी मुखौटा धारण किए ये सत्तापरस्त लोग ही शायद उसका उद्धार कर सकते हैं, उसके मुक्तिदाता बन सकते हैं। इसलिए तो न्याय–अन्याय को समझने के बावजूद वह अपना कोई स्टैण्ड नहीं ले पाता और उल्टे मालिकों की विवशता की बात करने लगता है। परन्तु आज का दलित साहित्य दलित चेतना को गाँधीवादी मुखौटों पर विश्वास नहीं करता वह तो अम्बेडकर के क्रांतिकारी तेवर को आत्मसात कर आगे, बढ़ रहा है। प्रसिद्ध साहित्यकार एवं दलित आलोचक प्रो. चमन लाल का मानना है कि– "पिछले कुछ वर्षों से दलित जीवन भारतीय समाज के केन्द्र में आ गया है इसके कारण चाहे राजनीतिक हों किन्तु इसका प्रभाव मानव जीवन के सभी पक्षों – आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पर पड़ा हैं।"[18] वस्तुतः मन्नू

भंडारी ने दलित चेतना के इन दो छोरों के सहारे दो पीढ़ियों के दृष्टिकोण को पाठक के सामने रखकर परिस्थितियों के वैषम्य को उजागर कर दिया है और यह संकेत दिया है कि हीरा की पीढ़ी की दलित चेतना, बिसू और बिन्दा की दलित–चेतना में तब्दील हो जाए यह दिन अब दूर नहीं।

ग. 'महाभोज' में व्यक्त विभिन्न संघर्ष एवं मन्नू भंडारी का सामाजिक चिन्तन

'महाभोज' न केवल हिन्दुस्तान के राजनैतिक जीवन में फैले भ्रष्टाचार का दस्तावेज है, बल्कि यह हिन्दुस्तानी सामाजिक परिस्थितियों का भी उतना ही मजबूत दस्तावेज है। दरअसल मन्नू भंडारी राजनैतिक जीवन का चित्रण करते समय सामाजिक जीवन की उपेक्षा नहीं कर सकती थी, क्योंकि राजनीति व समाज को काट कर या अलग– अलग करके किसी रचना को आकार दे पाना संभव नहीं है। यह बात मौजूदा लेखन के बारे में विशेषतः कथा–साहित्य के बारे में, कहीं ज्यादा सच है जो सामाजिक, राजनैतिक रूप से प्रतिबद्ध है।

'महाभोज' में वर्णित समाज के स्वरूप का सीधा सम्बन्ध आज के समाज के उस खास पहलू से है जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद से आजाद होने के बाद भी जनतंत्र की बेड़ियों मे जकड़ा हुआ है। यह सही है कि 'महाभोज' में आए प्रसंगों का सम्बन्ध ज्यादातर राजनैतिक गतिविधियों से जुड़ा हुआ है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि राजनीति को समाज से काट कर देखा जाय। समाज के विभिन्न पक्षों में आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि को गिना जा सकता है। आजादी से पहले के साहित्य में, विशेषकर उस साहित्य में जिसमें धर्म, नीति, उपदेश सरीखी चीजें ज्यादा मिला करती थीं और जिसका समाज पिछड़ा एवं अंधविश्वासों पर आधारित समाज था, उस समाज में धार्मिक आग्रह कुछ ज्यादा ही थे। यही वजह है कि उस समय के साहित्य का विश्लेषण धार्मिक प्रकृति को ध्यान में रखकर किया जाता रहा है। उदाहरण के रूप में भक्ति कालीन साहित्य को देखा जा सकता है।

आजादी के बाद का दौर मुख्य रूप से भारतीय समाज में एक नये परिवर्तन का दौर है। यह परिवर्तन अपने खुद के बनाये राजनैतिक ढ़ाँचे के विकास के चलते हुए सामाजिक परिवर्तन से जुड़ा है। इसलिए यह मान लेने में कोई हर्ज नहीं है कि 'महाभोज' में वर्णित राजनैतिक स्वरूप समाज के स्वरूप का ही एक हिस्सा है।

महाभोज में वर्तमान समाज को उसकी समग्रता में देखने की कोशिश की गई है। इसमें एक तरफ गाँवों की जिन्दगी अपनी पूर्णता के साथ उभरती है तो दूसरी तरफ शहरी जिन्दगी का अलगाव भरा रूखापन भी। कहा जा सकता है कि शहर और गाँव का यह विलक्षण संयोजन ही उपन्यास को शक्ति और परिपक्वता प्रदान करता है।

'महाभोज' में एक तरफ अगर जातीय टकराव है तो दूसरी तरफ गाँवों में राजनैतिक संरक्षण में पनप रही क्षेत्रीय गुंडागर्दी भी अपने यथार्थ रूप में मौजूद है। समाज में फैली कुरीतियाँ एवं विसंगतियाँ भी लेखिका की दृष्टि से बच नहीं पायी हैं। इतना ही नहीं इस उपन्यास को पढ़ने के बाद एक बार तो ऐसा लगता है कि प्रेमचन्द का होरी अभी भी जिन्दा है और उसी तरह शोषित है जैसे की प्रेमचन्द के जमाने में था। अपने विद्रोही तेवर के साथ गोबर से भी इस उपन्यास में मुलाकात होती है। फर्क केवल इतना है कि जहाँ 'गोदान' में होरी की मौत होती है, वहीं 'महाभोज' में गोबर के दूसरे रूप की। गोबर का यह दूसरा रूप महाभोज में बिसू है और होरी यहाँ हीरा है। एक अन्तर और है, होरी की मौत जहाँ सामन्ती–साम्राज्यवादी ढ़ाचे में पिसकर होती है वहीं बिसू की मौत प्रजातांत्रिक ढ़ांचे में पिसकर। जाहिर है कि फर्क आजादी के पहले के भारत और आजादी के बाद के भारत में है। समाज व्यवस्था का शोषक रूप अभी बदस्तूर कायम है। सिर्फ इतना ही बदलाव आया है कि होरी की जगह बिसू व्यवस्था की वेदी पर बलिदान हो रहा है।

'महाभोज' में शोषित वर्ग का चित्रण काफी गंभीरता से किया गया है जो समाज का एक प्रमुख हिस्सा है। महाभोज का प्रधान संधर्षपीड़ितों का अपने हक के लिये किया गया संघर्ष है जिसकी अगुआई बिसू नाम का एक हरिजन नव–युवक करता है। बिसू की मौत पूरे राजनैतिक खेल के केन्द्र में रहती है। और पूरा उपन्यास इसी मुद्दे को लेकर दो राजनैतिक दलों में हुये आपसी टकराव के साथ विकसित होता है। बिसू का कसूर सिर्फ इतना है कि उसने गांव में हुए आगजनी काण्ड के खिलाफ सचाई बयान करने का संकल्प किया था। अगर बिसू जीवित रहता तो निश्चित रूप से इस काण्ड की असलियत सामने आती और नतीजे में गांव के शक्तिशाली तबके के वे लोग फंसते जिन्हें मजबूत राजनैतिक संरक्षण मिला हुआ है। अतः प्रजातन्त्र की उसी महान परंपरा का निर्वाह करते हुए जिसके मुताबिक कुर्सी की प्राप्ति राह मे आने वाले किसी भी व्यक्ति को हटा देना ही धर्म है। बिसू की हत्या करवा दी जाती है।

बिसू की मौत का प्रकरण हमारी समाज व्यवस्था के उस रूप को सामने लाता है जिससे यह साफ हो जाता है कि आज भी समाज का निचला वर्ग उसी तरह उपेक्षित, पीड़ित और पद दलित है जैसे सामन्ती समाज में अथवा ब्रिटिश हुकूमत के दौरान था। 'महाभोज' का यह प्रकरण गांधीजी के अछूतोद्धार की भी खिल्ली उड़ाता है।

सामाजिक व्यवस्था को चलाने वाले राजनैतिक सूबेदार केवल मौके का फायदा उठाने की कला में निपुण हैं। उन्हें इससे कोई मतलब नहीं हैं कि जनता कहाँ तक सुखी है अथवा कहाँ तक दुखी है। उनके लिए "सच पूछा जाए तो बड़ा न आदमी होता है न घटना। यह तो बस मौके–मौके की बात होती है।"[19] इसी स्वार्थपरता के चलते बिसेसर सरीखे लोग अपने हक की

लड़ाई में मौत को गले लगाते हैं और यह मौत एक बार पूरी समाज व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है।

लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं है कि सच्चाई और ईमानदारी की इस लड़ाई में उनकी हार हुई है। लेखिका का ऐसा मन्तव्य भी नहीं है। बल्कि उनकी हार भ्रष्टाचार और अन्याय के उस स्वरूप को सामने लाती है जिससे प्रेरित होकर और शक्ति पाकर आने वाले समय में हजारों–लाखों बिसेसर, सक्सेना और त्रिलोचन सिंह रावत अपने हक की लड़ाई लड़ेगे। उपन्यास में भी इन तमाम घटनाओं के बाद भी अन्याय और जुल्म के खिलाफ जंग जारी रहती है। आगजनी काण्ड और बिसू की मौत के प्रमाण सहित एस. पी. सक्सेना उस लड़ाई को जारी रखता है जिसकी शुरूआत बिसेसर ने की थी। लोचन भैया भी अन्त में महसूस करते हैं "आज तो परिवर्तन का नाम लेने वाले की आवाज घोंट दी जाती है– उसे काट कर फेंक दिया जाता है। एक तरफ फिंके गिने–चूने आदमियों के घुटे गले और रूंधी आवाजों से क्रांति का स्वर फूट सकेगा अब कभी?" एकला चलो रे गीत कितने कदम चला पाएगा किसी को भी ?"[20]

लोचन भैया का यह चिन्तन और उससे उठे सवाल हिन्दुस्तानी समाज के सामूहिक सवाल हैं जिनके समाधान की जरूरत भी तेजी से महसूस की जा रही है। बहुत संभव है कि आम जनता व्यापक स्तर पर इन सवालों से जूझ कर इनकी असलियत को समझे और आने वाले समय में उस लड़ाई की ताक़त बने जो बिसेसर द्वारा शुरू की गई है और जिसे बिसेसर की मौत के बाद एस. पी. सक्सेना जारी रखे हुए हैं तथा जिससे जुड़े सवालों पर भ्रष्ट राजनीति का अकेला विभीषण त्रिलोचन सिंह रावत गंभीरता से सोच रहा हैं।

जातिगत व क्षेत्रीय द्वन्द्व

'महाभोज' उपन्यास में जातीय समीकरणों और क्षेत्रीय संघर्षों को भी उभारा गया है। भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था आधारित समाज रहा है। वर्ण व्यवस्था के मुताबिक ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णों में भारतीय समाज विभक्त रहा है। इसमें सर्वाधिक शोषण दलितों का हुआ है। यह व्यवस्था आज भी अपने विकृत रूप में मौजूद हैं। अब वर्ण व्यवस्था का स्थान जाति व्यवस्था ने ले लिया है। सैकड़ों नई जातियों का जन्म हुआ और उसी के अनुसार जातीय समीकरण भी बने। गुलाम प्रथा का अन्त हुआ सामन्ती प्रथा का अन्त हुआ ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अन्त हुआ लेकिन एक ही चीज ऐसी रही जिसका अन्त नहीं बल्कि विस्तार ही हुआ है। सरोहा गाँव भी जाति प्रथा से उपजे भयंकर परिणामों का दस्तावेज है जिसमें न तो दो धर्मों की टकराहट है, न दो राष्ट्रों की, बल्कि यहाँ टकराहट है गाँव के ठाकुर जोरावर सिंह और गाँव के हरिजन बिसेसर की। जोरावर सिंह सामंत नहीं है और बिसेसर भी वह शूद्र नहीं है जिससे चौसठ फीट की दूरी पर दक्षिण भारत के ब्राह्मण चला करते थे और जिनकी छाया से भी कलुषित हो जाने का भय हुआ करता था।

वस्तुतः महाभोज में जो टकराहट देखने को मिलती है, वह दो जातियों की टकराहट है। ये जातियाँ हैं– ठाकुर और हरिजन। इसे उच्च और निम्न वर्ग की भी टकराहट कहा जा सकता है। आज भी यह बड़ी आम बात है कि जहाँ कहीं सवर्णों के हितों पर ठोकर लगती है, उसका पुराना शोषक रूप सामने आ जाता है। 'महाभोज' में भी यही होता है। गांव के ठाकुरों द्वारा हरिजनों के घरों में आग लगा दी जाती है। यह आग उनके उसी पुराने तेवर को सामने लाती है जो अब धीरे–धीरे नष्ट हो रहा है और इधर बिसेसर के

रूप में एक नई ताकत भी उभर रही है। लेकिन बिसेसर की भी हत्या गांव के ठाकुरों द्वारा कर दी जाती है।

जातीयता के साथ–ही–साथ क्षेत्रीयता के दानव को भी 'महाभोज' में सर उठाते देखा जा सकता है। सरोहा एक चुनावी क्षेत्र है और इसकी अपनी कुछ विशेषताएं है। मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्र तथा सीधे–साधे ग्रामवासियों का इससे रिश्ता है। उपन्यास को पूरी कथा–वस्तु इसी क्षेत्र के राजनैतिक समीकरण के बनने और बिगड़ने की कथा है। स्वाधीनता के बाद ब्रिटिश राज का आतंक समाप्त होने पर प्रजातन्त्र की डुगडुगी बजी। नतीजा यह रहा कि प्रजातांत्रिक सरकार सब की सरकार हुई और इसलिए किसी की न रही। यह हुई उनकी जिनके पास साधन सुविधाएँ और शक्ति थी। यहीं कारण रहा कि अपने–अपने क्षेत्र में प्रभावशाली लोग राजनीति के कर्णधारों के रूप में उभरे और उन्होंने अपने उभार में हर तरह के हथकंडों का इस्तेमाल किया। इन क्षेत्रीय मठाधीशाों पर सरकार की कृपा हुई और ये ही विधायक से सांसद तक की कुर्सियों पर विराजे। क्षेत्रीय आतंक इन क्षेत्रीय मठाधीशों का प्रमुख औजार रहा। अपने आतंक के बूते इन्होंने एक तरह से अपना क्षेत्रीय राज कायम कर लिया। क्षेत्रों के अधिकार को लेकर आपसी संघर्ष भी बढ़े जो आज भी जारी है। 'महाभोज' का जोरावर सिंह इसी तरह की एक क्षेत्रीय हस्ती है जिसके पास वोट बैंक सुरक्षित है। यही कारण है कि उसका महत्व राजनीति के बड़े सूवेदारों की दृष्टि में कुछ ज्यादा ही है। यह महत्व वोट की राजनीति के चलते पैदा हुआ है। लखन सिंह को यह भय सताता है कि अगर जोरावर विरोध करेगा या स्वयं चुनाव लड़ जायेगा तो उसके वोटों पर असर पड़ेगा। इसी को बचाने के लिए दा साहब जैसा नीतिवाक्य बोलने वाला राजनीतिज्ञ उसके सारे अपराधों को छिपाने की उच्च स्तरीय कोशिश करता है और बिसू की मौत को आत्महत्या का मामला घोषित कर दिया जाता है।

महाभोज की प्रेरणा के बारे में उन्होंने अपने एक साक्षात्कार में सामाजिक समस्याओं से परेशान होने की बात कही है। स्वाभाविक है कि सामाजिक समस्याओं से वहीं परेशान हो सकता है जिसके लेखन में जन पक्षधरता हो। उनके पिता जी का आग्रह हमेशा यह रहा कि मन्नू "रसोई घर में घुसे रहने की बजाय सामाजिक कार्यों में विशेष रूचि लें।"[21]

'महाभोज' उपन्यास में केवल कथा नहीं है और ना ही केवल घटनाये हैं बल्कि बीच–बीच में लेखिका का सामाजिक चिन्तन भी उभरता चलता है। बेहतर होगा कि उसी के आधार पर उनके सामाजिक चिन्तन को समझा जाए। इस सिलसिले में दो चीजों पर गौर करना बेहद जरूरी है। एक तो यह कि 'महाभोज' किसे समर्पित है? और दूसरा वह जो 'महाभोज' के बारे में 'महाभोज' में ही मन्नू जी ने क्या कहा। महाभोज किसी व्यक्ति या किसी साहित्य हस्ती को समर्पित न होकर समर्पित है– "दुर्निवार सम्मोहन भरी उस खतरनाक लपकती अग्नि लीक के लिए जो बिसू और बिन्दा ही तक नहीं रूकी रहती।"[22]

मन्नू जी ने इसकी भूमिका में ही अपने व्यक्तिगत दुख–दर्द की बजाय परिवेश के प्रति ऋण–शोध की घोषणा और साथ में यह तर्क भी कि घर में आग लगी होने के वक्त अपने अन्तर्गत में विचरण करना अनुचित हुआ करता है, साबित करता है कि मन्नू जी का एक मात्र उद्देश्य 'महाभोज' के माध्यम से समाज की उन विसंगतियों को सामने लाना है जो राजनैतिक भ्रष्टाचार के साये में पनपती है। लेकिन मन्नू जी के सामाजिक चिन्तन की इतिश्री इतने तक ही नहीं मानी जा सकती। महाभोज शोषण के विरूद्ध उठने वाली आवाज का विवरण मात्र नहीं है बल्कि उस जंग का ऐलान भी है, जो बिसू की मौत और बिन्दा के कारावास के बाद भी जारी रहेगा।

मन्नू जी ने इस उपन्यास का समूचा चित्रण यथार्थ की अपनी गहरी पकड़ के आधार पर किया है। यह सही है कि इस उपन्यास की प्रेरणा भूमि बेलछी काण्ड है जो जनता पार्टी के शासन के दौरान घटित हुआ था। यह घटना उपन्यास की कथा वस्तु तो बनती है लेकिन इसमें व्यक्त चिन्तन मन्नू जी का अपना सामाजिक चिन्तन है जिसे महज बेलछी काण्ड तक सीमित नहीं किया जा सकता। अगर ऐसा होता तो उपन्यास का कोई अन्त भी होता। उपन्यास का अन्त बेहद यथार्थपरक है, जो एस. पी. सक्सेना द्वारा जारी रखी हुई लड़ाई की सूचना देता है और इसी लड़ाई के बारे में त्रिलोचन सिंह रावत का चिन्तन भी जारी रहता है। अन्त में त्रिलोचन सिंह रावत के चिन्तन को मन्नू भंडारी का ही चिन्तन कहा जा सकता है, जिससे उठा हुआ सवाल आज भी उतना ही जीवन्त और प्रासंगिक है जितना महाभोज लिखे जाने के समय। यह सवाल है– "अपने आस–पास और चारों तरफ जो कुछ हो रहा है, उसे आँख मुँदकर स्वीकारते रहें– एकदम उदासीन एवं तटस्थ होकर? रह सकता है कोई, रह सकता है कोई भी जीवित आदमी इस तरह? नहीं रह सकते थे, तभी तो एक बहुत बड़ी क्रांति के एक छोटे से वाहक बने थे। पर कैसी हुई यह क्रांति? कहीं से कुछ भी तो नहीं बदला। अब कहाँ से होगी दूसरी क्रांति, और कौन करेगा उस क्रांति को जो सब कुछ बदल दे? आज तो परिवर्तन का नाम लेने वाले की आवाज घोंट दी जाती है। एक तरफ फिंके गिने–चुने आदमियों के घुटे गले और रूधी आवाजों से क्रांति का स्वर फूट सकेगा अब कभी ?"[23]

कहा जा सकता है कि उपन्यास के माध्यम से अपने सामाजिक चिन्तन को बहस की शक्ल देने वाली मन्नू भंडारी 'महाभोज' तक इसी सवाल से संघर्ष करती रहती हैं और यही सवाल उनके सामाजिक चिन्तन का निचोड़ माना जाना चाहिए।

संदर्भ संकेत

[1] मन्नू भंडारी, महाभोज, पृ. 6

[2] डॉ. वंशीधर, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मन्नू भंडारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, पृ. 102

[3] मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, पृ. 133

[4] मैला आँचल, रेणु, पृ. 290

[5] मन्नू भंडारी, महाभोज, पृ. 116

[6] वही, पृ. 119

[7] मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, पृ. 135

[8] मन्नू भंडारी, महाभोज, पृ. 134

[9] वही, पृ. 118

[10] वही, 147

[11] राष्ट्रीय सहारा, 25 मई 2003

[12] मन्नू भंडारी, महाभोज, पृ. 158

[13] वही, पृ. 140

[14] वही, पृ. 65

[15] वही, पृ. 66

[16] वही, पृ. 5

[17] वही, पृ. 62

[18] प्रो. चमन लाल, पंजाबी उपन्यास में दलित जीवन का यथार्थ, दलित साहित्य (वार्षिकी), पृ. 56

[19] मन्नू भंडारी, महाभोज, पृ. 12

[20] वही, पृ. 182

[21] नंदनी मिश्रा, मन्नू भंडारी का उपन्यास साहित्य, पृ. 136

[22] मन्नू भंडारी, महाभोज पृ. 5

[23] वही, पृ. 182

तीसरा अध्याय - 'महाभोज' के अंग्रेज़ी अनुवाद का भाषिक विश्लेषण

क. अनूदित उपन्यास में प्रयुक्त भाषा

संरचना/शैली/प्रभाव का विश्लेषण

ख. मुहावरे एवं लोकाक्तियों का तुलनात्मक विश्लेषण

(क) अनूदित उपन्यास में प्रयुक्त भाषा संरचना/शैली/प्रभाव का विश्लेषण

अनुवाद प्रक्रिया का जन्म संभवतः मानव जन्म के साथ ही हुआ होगा। मनुष्य संवेदनशील प्राणी है। वह विभिन्न भाव–बोधों को ग्रहण करता रहता है अपने अंतस में पुनः मंथन करके उसके स्वरूप को बार–बार आकार–प्रकार देता है। फलतः अभिव्यक्त भाव, मूल गृहीत भाव से बहुत बदला हुआ होता है। भले ही वह मूलनिष्ठ भाव ही हो, पर वह यथा–तथ्य रूप में अभिव्यक्त नहीं होता। इस प्रकार मूलनिष्ठ भाव के परिवर्तित स्वरूप की अभिव्यक्ति एक तरह से अनुवाद है– मूल भाव का अनुवाद।

साहित्य की विविध विधाओं के अनुवाद में विविध प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। उन कठिनाइयों का ध्यान रखकर यथासंभव उनका निराकरण करने में समर्थ होने वाला अनुवादक ही सफल अनुवादक माना जाता है। अनुवादक का काम अपनी विद्वता, सामर्थ्य और योग्यता का प्रदर्शन करना नहीं अपितु मूल लेखक के पाठ को ही पाठक से परिचित कराना होता है। पाठक और मूल लेखक को यथा संभव मिलाने भर का काम अनुवादक का है, उन्हें अपनी शर्तों पर मिलाने का नहीं। अनुवादक को मूल पाठ के प्रति निष्ठावन होना चाहिए, तत्वपरायण होना चाहिए। यह परायणता कहीं–कहीं अनुवाद में विरूपता ले आती है। सफल अनुवादक वही है, जो पाठनिष्ठता और प्रस्तुति दोनों की यथासंभव रक्षा कर सके।

स्रोत भाषा के पाठ का पूर्णतया अनुवाद नहीं किया जा सकता। वास्तव में पाठ में कई ऐसे भाषिक रूप होते हैं, जिसका अनुवाद नहीं हो पाता। इसमें कई बार भाषापरक एवं संरचनात्मक कठिनाइयाँ सामने आती हैं। भाषापरक कठिनाइयों के अंतर्गत मुख्य रूप से स्रोत भाषा के शब्द,

वाक्यसंरचना आदि पर्यायवाची रूप लक्ष्य भाषा में न मिलना आता है। प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट संरचना होती है, इसलिए स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के भाषिक रूपों में समान अर्थ मिलने की स्थिति अपेक्षाकृत कम होती है। 'महाभोज' के अनुवाद में यह स्थिति कई बार आई है।

प्रत्येक भाषा में कई शैलीगत भेद होते हैं। ये शैलियाँ अपना स्थिर रूप धारण किए होती हैं। इन शैलियों से उत्पन्न पाठ के अभिलक्षणों को संप्रेषित करने के लिए लक्ष्य भाषा में प्रयत्न करना पड़ता है। चूँकि यह आवश्यक नहीं है कि लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा की समस्त भाषा शैलियाँ उपलब्ध हों, इसलिए अनुवाद उसी प्रकार नहीं हो पाता। जैसा कि मानक हिन्दी भी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी, सामान्य बोलचाल की हिन्दी, उर्दू मिश्रित हिन्दी, अरबी–फारसी मिश्रित हिन्दी, अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी आदि प्रयोगों को समेटे हुई है।

कथा साहित्य के अनुवाद का काम मात्र मूलकथा लेखक के कथन या कथानक मात्र से परिचित कराना नहीं, अपितु उस सम्पूर्ण प्रभाव को उत्पन्न करना है जो मूल रचना को पढ़ने पर पड़ता है। उपन्यासकार या कहानी लेखक जीवन का ऐसा चित्र या ऐसी झाँकी प्रस्तुत करता है कि पाठक अध्ययन के क्षणों में उस चित्र या झाँकी के साथ तादात्मय स्थापित कर लेता है। इसकी सफलता लेखक कृत समुचित वातावरण की सृष्टि, कथोपकथन, चरित्र–चित्रण आदि पर आश्रित होता है। उपन्यास में चित्रण किसी काल विशेष, देश विशेष या समाज विशेष का होता है। लेखक जिस पाठक वर्ग के लिए लिखता है, वह वर्ग वर्णित समाज, देशकाल और वातावरण से प्रायः परिचित होता है, अतः उसके साथ तादात्मय स्थापित करने में उसे कठिनाई नहीं होती है।

अनुवादक जिस भाषा में अनुवाद कर रहा है, उसको बोलने वाला समाज यदि मूल रचना के वातावरण, देशकाल और समाज से परिचित है तो अनुवादक का काम अपेक्षाकृत सरल हो जाता है। परन्तु यदि पाठ का देश काल या वातावरण सभी उसके लिए नवीन हो तो अनुवादक का दायित्व काफी कठिन हो जाता है। उसके दो काम हो जाते है– पहला पाठक को मूल के वातावरण से परिचित कराना और दूसरा उसके देश काल एवं पात्र से तादात्मय स्थापित कराना।

अनुवादक संबंधित परिवेश से परिचित कराने के लिए न तो पहले कोई भूमिका दे सकता है, न बड़ी–बड़ी टिप्पणियाँ ही, उसे अनूदित पाठ के सहारे ही यह सब करना होता है। कुछ विशिष्ट संदर्भों को स्पष्ट करने के लिए संक्षिप्त पाद टिप्पणी जरूर दी जा सकती है– परन्तु यदि यह टिप्पणी लम्बी और अधिक है तो पाठक की ज्ञानवृद्धि भले ही हो जाए, रचना के साथ तादात्म्य स्थापित करने में बहुत बाधा आएगी। अनुवादक के सामने साधन होता है केवल न्यूनतम एवं निकटतम शब्दावली की सहायता से भाषान्तरण और उसका साध्य होता है, मूल के सम्पूर्ण चित्रण से तादात्म्य स्थापित कराना।

'महाभोज का अंग्रेजी अनुवाद रूथ वनिता ने 'The Great Feast' नाम से किया है। इसके अनुवाद पर विचार करने से पहले इसके नाम के अनुवाद पर विचार कर लेना उचित होगा। महाभोज शब्द 'भोज' के साथ 'महा' विशेषण के जुड़ने से बना हैं 'भोज' के साथ 'महा' विशेषण जुड़कर अशुभ अर्थ का द्योतक हो जाता है। लेखिका ने 'महाभोज' का प्रयोग एक ऐसे विशाल भोज के लिए किया है, जिसमें शेर, सियार और गिद्ध आदि नाना प्रकार के हिंसक जीव किसी असहाय वन्य प्राणी का मांस नोंच–नोंच कर खा रहे हैं। यह

शीर्षक प्रतीकात्मक एवं व्यंग्यात्मक है। इस महाभोज के हिंसक जीव राजनीतिक, व्यवसायी , उच्च जाति के भूमिपति और पुलिसकर्मी है। उपन्यास के शीर्षक को यदि केन्द्रीय विषय का संकेतक माना जाए तो इसका विषय वह समकालीन समाज है, जिसमें शक्तिशाली आततायी किस्म के भूमिपति दलित और पिछड़े वर्ग का आर्थिक शोषण एवं दमन कर रहे हैं। रूथ वनिता ने इसका शब्दशः अनुवाद कर दिया हैं 'The Great Feast' से 'महाभोज'शब्द की अभिव्यक्ति तो हो जाती है परन्तु मृत्यु के बाद होने वाले भोज की व्यंजना नहीं उभर पा रही है। दरअसल यह समस्या 'महाभोज' शब्द से जुड़ सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ के कारण है। फिर भी अनुवाद की सीमाओं को ध्यान में रखकर 'The Great Feast' अनुवाद को उचित माना जा सकता है।

अनुवाद के संबंध में यह जग जाहिर है कि अच्छा अनुवाद वही है जिसे पढ़ते हुए मूल का सा आनन्द आए। रूथ वनिता ने एक हिन्दी पाठ का अनुवाद अंग्रेजी में किया है। निश्चित तौर पर सांस्कृतिक भिन्नता भाषायी भिन्नता का कारण होती है। किन्तु भाषा पर अनुवादक को विशेष ध्यान देना पड़ता है। इसलिए नहीं कि भाषा में सजाव–श्रृंगार किया जाए, बल्कि इस कारण कि स्रोत भाषा में जो परिवेश और वातावरण सृजित हुआ है और रचना के मूल स्वर की पूर्व पीठिका बनाने या बोध को तीव्र करने अथवा व्यंजकता बढ़ाने के लिए एवं मन्नू भंडारी ने स्रोत भाषा अर्थात् हिन्दी की स्वाभाविकता के साथ जो रचनात्मक हस्तक्षेप किया है उनका अंकन लक्ष्य भाषा में किया जा सके। लक्ष्य भाषा में उस परिवेश और वातावरण का अंकन मात्र सांस्कृतिक समझ के आधार पर नहीं किया जा सकता। उसके लिए आवश्यक है कि लक्ष्य भाषा की सभी विशिष्टताओं, शब्दों की महक और उनकी व्यंजकता से अनुवादक न केवल परिचित हो बल्कि शैली की रोचकता के साथ उनका प्रयोग प्रवाह के साथ अनुवाद में कर सके।

उपन्यास प्रत्यक्षतः शब्दों का पुंज ही है। ऐसे शब्दों का जो 'अर्थ' युक्त और 'लिखित' होते हैं। एक विशेष योजना के तहत शब्द, पद और वाक्य फिर पैराग्राफ और परिच्छेद बनते हैं और अन्ततः वे पाठक की चेतना में एक कथा–संसार की सृष्टि करने में समर्थ होते हैं। कथा संसार की यह सृष्टि एक ओर उपन्यासकार से जुड़ी होती है और दूसरी ओर पाठक से। रचनाकार शब्दों की सहायता से अपनी चेतना में एक कथा–संसार की पुनः रचना करता है। किसी भी उपन्यास की श्रेष्ठता उसकी भाषा की सर्जनात्मकता पर निर्भर होती है। महाभोज इस दृष्टि से बहुत ही उल्लेखनीय उपन्यास है। इसकी भाषा तनाव और व्यंग्य से लबरेज है। उपन्यास की पहली ही पंक्ति में लावारिश लाश को गिद्ध नोच नोच कर खा जाते हैं, पूरे पैराग्राफ का बोध कराती है। पाठक को यह वाक्य पूरे पैराग्राफ के रूप में प्राप्त होता है।

"लावारिस लाश को गिद्ध नोंच–नोंचकर खा जाते हैं। पर बिसेसर लावारिस नहीं। उसकी लाश सड़क के किनारे पुलिस को पड़ी मिली, शायद इसलिए लावारिस लाश का खयाल आ गया। वरना उसके तो मां भी हैं, बाप भी। गरीब भले ही हो पर हैं तो विश्वास नहीं होता था कि वह मरा हुआ पड़ा है। लगता था जैसे चलते–चलते थक गया हो और आराम करने के लिए लेट गया हो। मेरे आदमी और सोए आदमी में अंतर ही कितना होता है भला। बस, एक सांस की डोरी। वह टूटी और आदमी गया। देखते ही देखते सारा गांव जमा हो गया।

महाभोज, पृ. 7

इसका अनुवाद रूथ वनिता ने इस प्रकार किया है–

Vultures devour the kinless dead. But Bissesar was not without kin. He was found lying dead on a roadside culvert. Perhaps that is why his death brought to mind an unclaimed corpse. But he has a mother and a father. True they are poor, but what of that? One could hardly believe that he lay there dead. It seemed as if while out walking, he must have felt tired and lain down to rest. The slenderest thread of breath separates sleep from death. It breaks, and the man is gone! Within Minutes, the whole village gathered at the spot".

The Great Feast, p.1.

यह पैराग्राफ या परिच्छेद शब्दों से नहीं, मौन से निर्मित हुआ है। इसका पाठ भिन्न–भिन्न पाठकों के लिए भिन्न–भिन्न हो सकता है। इतना ही नहीं, पढ़ते समय और पढ़ने के बाद घंटों और दिनों के बाद भी भिन्न–भिन्न हो सकता है। व्यंग्य के बारे काव्यशास्त्रियों का कहना है कि उसमें अभिधेयार्थ बाधित नहीं होता। ऊपर उद्धृत वाक्य में अभिधेयार्थ ज्यों–का–त्यों बना रहता है। पर उससे निस्सृत होने वाला व्यंग्य वक्ता और श्रोता अथवा प्रसंग की भिन्नता से ने जाने कितने अर्थ ग्रहण कर सकता है। इस वाक्य के 'लावारिस' 'लाश' गिद्ध आदि कम/कर्ता पद और 'नोच–नोच कर खाना' क्रिया पद व्यंग्यार्थ की अनेक सम्भावनाओं से युक्त है। इस पूरे परिच्छेद से एक साथ ही करूणा, जुगुप्सा और नृशंसता के भाव व्यक्त होते हैं और पाठक को अपने प्रभाव में ले लेते हैं। लेकिन यही बात इसके अनूदित परिच्छेद से गायब है। जिस ढंग से लावारिस लाश की अनुगूंज पूरे परिच्छेद में व्याप्त हैं इसके अंग्रेजी अनुवाद 'Kinless dead' अपना प्रभाव पूरे परिच्छेद में नहीं बनाए रख पा रहा है। पूरे परिच्छेद में 'लावारिस' के लिए तीन अलग–अलग अनुवाद किया गया है– 'Kinless', 'Withoutkin',

'Unclaimed corpse' यह तीन अलग अलग शब्दों का प्रयोग दर्शाता है कि अनुवादिका मूल परिच्छेद में व्यक्त 'लावारिस' शब्द के अनुगूंज को महसूस नहीं कर पाई। इस परिच्छेद की लय को न पकड़ पाने के कारण ही अनुवादिका इसकी मूल व्यंजना से भटक गई है। इसी कारण वे शाब्दिक अनुवाद के रूप में तीन अलग–अलग शब्दों को रख देती हैं, जो मूल के साथ न तो भाव के स्तर पर और न ही भाषा के स्तर पर न्याय कर पाते हैं। ऐसी समस्या समान्यतः इस उपन्यास के पूरे अनुवाद में कई जगह देखने को मिलती है। जो इस अनुवाद को प्रभावित करती हैं।

महाभोज उपन्यास हिन्दी में छोटे–छोटे वाक्यों की क्षिप्रता से निर्मित ऐसा पाठ है जो शब्द चयन की दृष्टि से भी पर्याप्त भाषिक सजगता के साथ लिखा गया है। किन्तु इस दृष्टि से अंग्रेजी अनुवाद थोड़ा कम रोचक है। इस रोचकता की कमी की वजह है उस सिलसिलेवार वाक्य संरचना का अभाव, जिसमें एक वाक्य अपने पिछले वाक्य से जुड़ता हुआ कथात्मकता के साथ बढ़ता चले। अंग्रेजी अनुवाद में गद्यात्मकता का ठोसपन प्रबल है जबकि हिन्दी पाठ में प्रवाह की तरलता महत्त्वपूर्ण है। अंग्रेजी की वाक्य संरचना जकड़ी हुई है, जो व्याकरण के नियमों में छूट लेते हुए काव्य में ढ़लने का जोखिम नहीं उठाती।

उदाहरण के तौर पर–

"ठीक छह बजे सुकुल बाबू की एंबेसडर गाँव में प्रवेश कर गई। समय के पाबंद हैं सुकुल बाबू। दो गाड़ियाँ और भी आई हैं। और तीन जीप। सब लोग धड़ाधड़ उतरे। पार्टी की ओर से स्वागत करने के लिए पहले से ही तैयार हैं कुछ लोग। पर स्वागत सूखे अभिवादनों से ही हुआ हैं। मालाबाजी एकदम नहीं। मौका गम का जो है। इन छोटी–छोटी बातों का बड़ा ध्यान

रखना पड़ता है। सब लोग मंच पर चढ़े। सुकुल बाबू की चाल विशेष रूप से धीमी है। कुछ तो उनके शरीर को भारीपन आड़े आता है, कुछ आज का यह मातमी मौका।" — *'महाभोज' पृ. 27*

इन पंक्तियों का अनुवाद रूथ वनिता ने कुछ इस प्रकार से किया है–

Sukul Babu's Ambassador entered the village at six sharp. Sukul Babu believes in Punctuality. Two more Cars and three Jeeps also arrived. A reception committee is waiting to welcome them on behalf of the party. But the welcome is confirmed to greeting. No garlanding, it's an occasion for mourning, after all. One must be very careful about little things like this. All the visitors ascend the stage. Sukul Babu walks slowly Partly because of his heavy body, "partly because today is a sad day!

— ***'The Great feast' Page - 19***

इस पैरा में भंडारी जी एंबेसडर के गाँव में प्रवेश करने के बाद अत्यंत छोटे–छोटे वाक्यों के सहारे आगे बढ़ती हैं। इन छोटे–छोटे वाक्यों से उस वातावरण की सृष्टि होती है। लेखिका का यत्न इस कारण इतना है कि 'दो और गाड़ियाँ' और 'तीन जीप के बीच' भी खड़ी पाई है। 'सब लोग धड़ाधड़ उतरे।' कहने से न केवल सुकुल बाबू के आने के महत्त्व का पता चलता है बल्कि इस बात का भी एहसास होता है कि वे जनता के सामने इस बात का विश्वांस हासिल करने का यत्न कर रहे हैं कि सुकुल बाबू ओर उनके लोग कितने बेचैन और परेशान हैं। अनुवादिका की समस्या यह है कि वह इस महत्त्व की उपेक्षा करते हुए मात्र अनुवाद कर्म को निभाती है।

"Two cars and three Jeeps also arrival" के द्वारा कथन का कार्य तो सफलता के साथ पूरा होता है, किन्तु यह पंक्तियों के बीच अंतराल की कमी या स्पेस होने का महत्त्व समझे बिना किया गया कार्य है। 'सब लोग धड़ाधड़

उतरे' जैसा महत्त्वपूर्ण वाक्य अनुवाद में उपेक्षित होकर गायब हो जाता है क्योंकि अनुवादिका उस पैराग्राफ में और संपूर्ण उपन्यास की अन्वितिपूर्ण व्यंजना में इस बात का महत्त्व नहीं समझ पाती हैं कि सुकुल बाबू जाहिर क्या करना चाहते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है 'निमिष–निमिषेर कहे कथा' अर्थात कथा उस वातावरण की पल–पल की कहानी है। पल–पल कहानी में वर्णित होते हैं जो अनिवार्य रूप से कथा की अंतिम व्यंजना में सहायक होते हैं। अन्यथा कथा की संक्षिप्तिता में पल–पल के वर्णन का अर्थ ही क्या रह जाता है। अनुवादिका इस मर्म को नहीं समझ पाई है। ऐसे ही एक प्रसंग को लेते हैं– "गांव की मायूसी से मुरझाए बच्चों के चेहरे खिल उठे हैं। उन्हें मेले जैसा मजा आ गया है। पहले जीप के पीछे–पीछे दौड़ते रहे, अब कागज का भोंपू बनाकर खुद चिल्लाते फिर रहे हैं। यह मौका गमी की वजह से आया या खुशी की वजह से, उन्हें कोई मतलब नहीं उनके लिए तो एक शगल हो गया।" — *'महाभोज' पृ. 27*

इसका अनुवाद रूथ वनिता ने इस प्रकार किया है–

"The village children, who had drooped under the pall of gloom in the village, bloomed once more. The preparations for the meeting were like a festival for them. First they ran behind the Jeeps, now they have made paper loudspeakers and are moving around, yelling themselves hoarse. Whether this is an occasion for rejoicing or for mourning hardly matters. For them it's as good as a funfair."

— ***"The Great Feast', p. 19***

इस पैरा में रूथ वनिता ने 'गांव के बच्चों के लिए 'Village Children' शब्द का प्रयोग किया है जो बहुत ही सतही प्रतीत होता है। इसके स्थान पर 'Urchings' शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए। गाँव में गली के बच्चे ही घूमते रहते है ऐसे माहौल में जाहिर है 'Street Urchins' कहने से ही वह बोध

होता है। 'Village Children' कोई सौन्दर्यपूर्ण भाषा नहीं कहा जा सकता। गाँव के बच्चों को इस भीड़–भाड़ से मेले जैसा मजा आता है। भंडारी जी ने एक छोटा वाक्य लिखा है "उन्हें मेले जैसा मजा आ गया है। अनुवादिका लिखती हैं "The preparation for the meetings were like a festival for them." यह अनुवाद छोटे वाक्यों की ऋंखला को तो तोड़ता ही है, अनावश्यक शब्दों को भी वाक्य में जगह देता है। अनुवाद का पाठक उस रस को प्राप्त करना चाहता है जो मूल कृति में आई है। मात्र भाषा उसके आढे आती है। अनुवादक को चुनौती है कि वह भाषा की बाधा हटाते हुए उस रस को पाठक तक पहुँचाये। उपर्युक्त पंक्ति में ऐसी कोई अस्पष्ट सांस्कृतिक छाया–प्रच्छाया नहीं, जिसके कारण अनुवादक को यह स्पष्ट करना पड़े कि वह सम्मेलन या मीटिंग की तैयारी थी। इतना भर कह देना पर्याप्त था कि "They enjoyed it as a feast/fete" किन्तु अनुवादिका हस्तक्षेप करते हुए यहाँ इस प्रकार अनुवाद करती हैं मानों छोटे बच्चों के लिए वह एक भाषा से नोट्स लेकर विस्तार से दूसरी भाषा में प्रकट कर रही हों। साहित्यिक अनुवाद में उस स्पेस या तीव्रता की रक्षा करना अनुवादिका का दायित्व है जिसे मूल में सायास उत्पन्न किया गया है। यही कारण है कि कई बार छंद का अनुवाद उसी meter में करने के लिए अनुवादक एड़ी–चोटी का जोर लगाते हैं। रूथ वनिता द्वारा किए गए इस अनुवाद में यह प्रयास कम ही दीखता है। इस अनुवाद में ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं जिनके कारण इस अनुवाद को एक सपाट अनुवाद कहा जा सकता है।

उदाहरण के लिए –

"ऊपर चढ़कर अभिवादन की मुद्रा में उन्होंने हाथ जोड़े। नजरों ने संख्या का अनुमान लगाते हुए भीड़ के विस्तार को अपने में समेटा। 'मजमा

ठीक ही जुट गया' का भाव चेहरे पर संतोष की हलकी–सी परत पोत गया। बस सारा आयोजन शांति से हो जाए और उनकी बात लोगों तक पहुँच जाए। इस घटना से लोगों के दिमाग जरूर उस जमीन जैसे हो रहे होंगे जो वर्षा के स्पर्श मात्र से फूट पड़ने को तैयार रहती है। आज वे ऐसी वर्षा करके जाएँगें कि फसल उनके हिस्से ही पड़े। मन–ही–मन उन्होंने उँगली में पड़े नीलम को नमस्कार किया और 'मत चूको चौहान' के भाव से माइक सँभाल लिया।"

– 'महाभोज' पृ. 28

इसका अनुवाद इस प्रकार किया गया है–

"When he was on stage he folded his hands in a gesture of salutation his eyes, assessing the strength of the crowd, seemed to draw its expanse into himself. 'Not a bad show' he thought, a faint shadow of satisfaction crossing his face. Now if only the whole thing went off peacefully and his speech created an empact must certainly have prepared the people's minds like soil which is prepared to sprout as soon as rain touches it. Today he would rain such words that the crop would surely fall to his share. Mentally soluting the sapphire on his finger, he took hold of the mike in a spirit of 'Do or Die'.

— "The Great Feast', p. 19

इस पैरा में आए पद 'मन ही मन' को एक सपाट भाषा में mentally का समानार्थी बताया जा सकता है। mentally की बजाय 'In this heart' चल सकता था, किन्तु 'mentally soluting' से मन ही मन नमस्कार करने का अर्थ तो नहीं ही प्रकट होता है। साथ ही 'मत चूको चौहान' के लिए Do or Die कहने से एक रूप में व्यंजन तो होती है कि कर डालों लेकिन वह धूर्तता या शातीराना

छवि नहीं प्रकट होती, जिसमें अवसर का लाभ उठाने की भावना हो, जो यहाँ सुकूल बाबू के चरित्र में उफन रही है। 'Do or Die' तो विवशता की स्थिति में साहस का करों या मरों की भावना व्यंजित करता है।

इसी प्रकार "तैश में लिपटा हुआ प्रश्न मज़में के बीच उछाल दिया" का अनुवाद "Threw this impressions question की जगह aggressive, angered, Ignited, Furious, question रहना ज्यादा उचित होता। भीड़ को देखकर मजमें का अंदाजा लगाते सुकूल बाबू 'मजमा ठीक ही जुड़ गया' का भाव प्रकट करते हैं। दूसरा अनुवाद 'Not a bad show' की बजाय उस अनुमान की पुष्टि होने के आधार पर ऐसी अभिव्यक्ति वाला होना चाहिए जो यह प्रकट करे कि सुकुल बाबू ने मजमा जुटाने की जो चाल चली थी वह सफल हो गई है। इसी कारण सुकुल बाबू के चेहरे पर संतोष का भाव आता है।

इसी प्रकार "तभी एक कोने में कुछ गोलमाल होने लगा" (PP. 31, Tr. 23) में गोलमाल के लिए And disturbance शब्द उचित नहीं। बल्कि Something भर से भी उस अस्पष्टता का बोध हो जाता है जो भाव रचनाकार के गोलमाल के बाद प्रकट किया है किंतु disturbance कहने से वह एक नकारात्मक अर्थ देने लगता है, जो सर्वथा अनुचित है। बल्कि रचनाकार राजनीति की उस घपलेबाजी को प्रकट करना चाहता है, जिसमें एक सभा में क्या–क्या कुछ–कुछ किया जाता हैं और नया लगने तथा अपने लोगों को भीड़ में घुला–मिलाकर नेता किस प्रकार की चाल चलते हैं। वह disturbance कह देने से प्रकट ही नहीं होता।

भाषा तभी शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण कही जाती है, जब वह अपनी अर्थ–छवियां और छायाएँ प्रकट करती चले। अन्यथा साहित्य की भाषा का वैशिष्ट्य ही समाप्त हो जाता है। व्यंजना और लक्षणा की जगह अभिधा का

ही महत्व रह जाएगा। तब वह साहित्य की नहीं अखबार की भाषा होगी। मन्नू जी ने साहित्य की भाषा का प्रयोग किया है। वह अपनी गत्यात्मकता के कारण चंचल है। अनुवाद की श्रेष्ठता उस चंचलता को पकड़ने में तो है किंतु उसे स्थिर कर देने में नहीं। अनुवाद को कतिपय विद्वान स्वयं में एक कृति की व्याख्या मानते हैं इसका कारण यह है कि उसमें कृति की एक ही भंगिमा, एक ही छवि प्रबल रूप से प्रस्तुत हो पाती है। सूक्ष्म स्तर पर कार्यरत अन्य अर्थछवियाँ लक्ष्य भाषा में निर्यातित नहीं हो पाती। वे भाषाओं की भिन्नता की शिकार होना सदा–सदा के लिए मूल कृति में ही निःशेष हो जाती हैं।

महाभोज के सन्दर्भ में यह चंचलता और भी ज्यादा है, इसका कारण है कि मन्नू जी की भाषा में दृश्य बिंबों की, हाव–भाव के विवरणों की प्रधानता है, जो ठीक वही अर्थ दे और व्यंजना में सहयोग दें। इसके लिए आवश्यक है कि लक्ष्य भाषा में उन बरीकियों को उतारा जाए। सकपकाने, हड़बड़ाने, रिरियाने की व्यंजनाएँ अनुवाद के लिए कम दुरूह नहीं।

अनुवाद अपने सृजन के क्षणों में अनुकृति होते हुए भी अपनी मौलिकता साथ रखता है। वह चाहे गद्य हो, पद्य हो आलोचन हो अथवा मुहावरा। इन सभी में वह मूल सदृश्य तो होता ही है पर कहीं न कहीं उसमें लेखक, कवि या आलोचक की अपनी मूल संवेदनाएँ भी जुड़ी रहती हैं जिनसे वह अनूदित कृति अनुपमेय हो जाती है।

अब हम कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं के माध्यम से 'महाभोज' के अंग्रेजी अनुवाद पर शब्द, वाक्य आदि प्रयोग के स्तर से विचार करेंगे।

(1) महाभोज में एक वाक्य है "मरे आदमी और सोए आदमी में अंतर ही कितना होता है भला! बस एक साँस की डोरी! वह टूटी और आदमी गया!"

– महाभोज, पृ. 7

देखते हैं Ruth Vanita ने इस वाक्य का अनुवाद किस तरह भी है :–

"It seemed as if while out walking, he must have felt tired and lain down to rest. The slenderest thread of breath separates sleep from death. It breaks and the man is gone!"

— The great feast, p. 01

स्पष्ट है 'आदमी गया' का अनुवाद Ruth Vanita ने 'Man gone' किया है। जबकि उपर्युक्त अवतरण पढ़ने से स्पष्ट है कि यहाँ 'आदमी गया' मृत्यु के सन्दर्भ में लिखा गया है। अतः इतना सिर्फ शब्दानुवाद करना सही नहीं है।

(2) उपर्युक्त अवतरण के ठीक बाद एक आँचलिक मुहावरा आया है– 'साँप सूँघना' "–गाँव की सरहद से जरा परे हटकर जो हरिजन–टोला है, वहाँ कुछ झोपड़ियों में आग लगा दी गई थी, आदमियों सहित।.....इसके बाद पता नहीं गांव वालों को कौन–सा जहरीला साँप सूँघ गया कि सबके मुँह सिल गए।"

– महाभोज, पृ. 7

रूथ वनिता ने उपर्युक्त अवतरण का अनुवाद इस प्रकार किया है:–

".....Some huts is the Harijan settlement which lies on the outskirts of the village were set on fire. .....After this, the villagers behaved as if they had seen a poisonous snake for not one of them would open his mouth."

—The Great Feast, p. 01

'साँप सूँघना' एक मुहावरा है जिसका शाब्दिक अर्थ होता हैः– 'निर्जीव होना'।

— p. 818 राजपाल हिन्दी शब्दकोश

स्पष्ट है रूथ वनिता ने सिर्फ शब्दानुवाद भर कर दिया है। किंतु अनुवाद करते समय मूल कथा के भाव को छोड़कर अनुवाद करना साहित्यिक अनुवाद के लिए सही नहीं है। यही कारण है कि उपर्युक्त अवतरण में 'साँप सूँघ जाने' का अनुवाद 'had seen a posionous snake' करने से मूल भाव स्पष्ट नहीं हो पाता।

(3) आगे एक आँचलिक शब्द आया है 'दनादन'।

'दनादन' का अर्थ होता है– 'जल्दी–जल्दी' किंतु प्रस्तुत अनुवादित पुस्तक में रूथ वनिता ने दनादन को अनगिनत के सन्दर्भ में अनूदित किया है।

"आग से उठने वाले धुएँ के बादल तो एक ही दिन में छँट गए, पर शहरी गाड़ियों से उठने वाली 'धूल के बादल कई दिन तक मँडराते रहे। नेताओं ने गीली आँखों और रूंधे हुए गले से शोक प्रकट किया और बड़े–बड़े आश्वासन दिए। अख़बारनवीस आए तो दनादन उस राख के ढ़ेर की ही फोटो खींचकर ले गए।"

– महाभोज, पृ. 8

उपर्युक्त अवतरण का अनुवाद रूथ वनिता ने कुछ इस तरह किया है :–

"....The clouds of smoke from the fire had dispersed in a day, but the clouds of dust raised by the vehicles from the city took many days to settle. Moist-eyed political leaders expressed outrage in tearful voices and made many fine promises. Journalists took countless photos of that pile of ashes."

— The Great Feast, p. 02

'Countless' का शाब्दिक अर्थ होता है– too numeroul; that can not be counted, असंख्य, बेशुमार। ***Advanced Dictionary - Sahni, p. P279***

स्पष्ट है 'दनादन' शब्द से जल्दी-जल्दी तो व्यंजित होता है किंतु Countless (असंख्य) नहीं।

(4) पृष्ठ 9 पर एक पूरे वाक्य का अनुवाद रूथ वनिता ने नहीं किया है। मूल अवतरण में वाक्य इस प्रकार हैं :–

"सच पूछा जाए तो बड़ा न आदमी होता है, न घटना। यह तो बस, मौके-मौके की बात होती है। मौका ही ऐसा आ पड़ा है। इस समय सरोहा में पत्ते का हिलना भी एक घटना की अहमियत रखता है।.....इस सीट के लिए भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू खुद खड़े हो रहे हैं। सुकुल बाबू क्या खड़े हो रहे हैं, समझ लीजिए पिछले चुनाव में हारी हुई पूरी की पूरी पार्टी खड़ी हो रही है खम ठोकर.....ललकारती हुई– सत्तारूढ़ पार्टी के पूरे अस्तित्व को चुनौती देती हुए।"

– महाभोज, पृ. 8

उपर्युक्त अवतरण का अनुवाद Ruth Vanita इस प्रकार किया है–

"If truth be told, neither men or incidents are of any consequence. It is the moment that determines importance.....it's not Sukul Babu alone but the entire party, defeated in the last elections that will challenge the rulling party."

The Great Feast, P03

उपर्युक्त अवतरण देखने से स्पष्ट है कि रूथ वनिता ने 'खम ठोंकर ललकारती हुई' का अनुवाद नहीं किया है। इसमें यह स्पष्ट तो हो रहा है कि

पूरी पार्टी इस चुनाव रूपी युद्ध में शामिल हो गई है किंतु जिस जोश से वह इसमें शामिल हो रही है वह स्पष्ट नहीं हो पाता।

(5) पृष्ठ 12 में एक वाक्य आया है– *फनफनाता* रहता है। मूल अवतरण में यह कुछ इस तरह है :–

"गुस्से से लखन की कनपटियों की उभरी हुई नसें तक फड़क रही हैं। कोई विश्वास करेगा कि यह दा साहब के संरक्षण में पला हुआ आदमी है?..... .....'तुम मेरे पूरक हो, भाई।' यों भी दूसरों को उनकी कमजोरियों के साथ स्वीकार करना स्वभाव है दा साहब का! कहना चाहिए, उदारता है उनकी इसी उदारता ने लखन को एकदम ढीठ बना दिया है– बस, फनफनाता रहता है।"

– महाभोज, पृ. 12

Ruth Vanita ने उपर्युक्त Paragraph का अनुवाद इस प्रकार किया है :–

"The veins on Lakhan's temples throbbed with anger. Would anyone believe that this man has grown up in Da Sahab's shadow?.....Da Saheb is never annoyed by this bad tempered behaviour. He only laughs and says "well, brother you are my complement. In any case, Da Saheb always accepts others as they are with all their weaknesses. This generosity of his has encouraged Lakhan to give free rein to his inpulsive nature."

— The Great Fest, P.06

मूल अवतरण में आए वाक्य 'इसी उदारता ने लखन को एक हद तक ढीठ बना दिया है– बस, फनफनाता रहता है में से – 'बरू फनफनाता रहता है' का अनुवाद Ruth Vanita ने नहीं किया है। लखन के ढीढ व्यवहार का पूरक है उसका फनफनाते रहना। किसी मूल वाक्य का अनुवाद आधा–अधूरा

करने से उस वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता, या फिर मूल कहानी की गंध या भाव अनुवादित कहानी में नहीं आ पाता। इस तरह पाठक किसी चरित्र–विशेष की व्यक्तित्व के अनेक पहलूओं से अनभिज्ञ रह जाता है और उसे कहानी से जोड़कर नहीं देख पाता। इस तरह की रीक्तियाँ या छूट अनुवाद में संभव नहीं है। इससे अनुवाद प्रभावित होता है और साथ–ही–साथ मूल भाव भी स्पष्ट नहीं हो पाता।

(6) आगे पृष्ठ 14 पर एक औपचारिक शब्द आया है– *'पल्ला* "और आप हैं कि इसी मूर्ख का *पल्ला* पकड़े हुए हैं। मारा है गरीबों को तो भुगतने दीजिए सजा। नहीं-चाहिए हमें जोरावर के वोट।'

– महाभोज, पृ. 14

Ruth Vanita ने उपर्युक्त वाक्यों का अनुवाद इस प्रकार किया है :– "And you have decided to walk in this idiot's shadow! If he has killed the poor, let him be punished. We don't need Jorawar's Votes.

— The Great Feast, P.7

'Shadow' शब्द का अर्थ होता है –

The shade cast by an object, परछाई

for eg- The child is afraid of its own shadow.

Advanced Dictionary - Sahni, P1/223

इस अवतरण के ठीक पहले पृष्ठ 12 में एक शब्द आया है– संरक्षण। "कोई विश्वास करेगा कि यह दा साहब के संरक्षण में पला हुआ आदमी है?" इस पंक्ति में आए 'संरक्षण' शब्द का अनुवाद Ruth Vanita ने Shadow किया है। कहानी पढ़ने से भी स्पष्ट होता है कि संरक्षण का अनुवाद Shadow किया जा सकता है क्योंकि लखन दा साहब के संरक्षण में पला–बढ़ा है। किन्तु दा

साहब के लिए लखन का पल्लू पकड़ने का अनुवाद This idiot's Shadow! करना सही प्रतीत नहीं होता।

(7) 'महाभोज' के एक अन्य पैरा को लेते हैं– "पर बात इतने पर ही खतम नहीं हुई। इस दर्दनाक हादसे से विरोधी दल के नेताओं के हृदय तो चकनाचूर हो गए। विधानसभा में उनके फटे गले से निकली चीख–पुकार वास्तव में फटे हृदय की अनुगूंज ही थी, जिसने सारे सदन में धरती–फाड़ हंगामा मचा दिया।"

– महाभोज, पृ. 8

इसका अनुवाद इस प्रकार किया गया है–

"But the matter did not end here. This tragic incident had left the leaders of the opposition heart-broken. Their chocked cries, echoer of their broken hearts, caused on earth-shattering up roar in the legislature."

— The Great Feast, p. 2

इस परिच्छेद में आए वाक्य 'हृदय तो चकनाचूर हो गए' का अनुवाद 'heart-broken' किया गया है जो इसके मूल में व्यक्त भाव के साथ न्याय नहीं कर पा रहा है। दरअसल यहाँ दिल टूटने की बात नहीं है। यहाँ तो टूटने से भी आगे जाकर 'चकनाचूर' शब्द का प्रयोग पूरी घटना की व्यंग्यात्मक प्रस्तुती है। दरअसल यहाँ नेताओं के हृदयहीन अवसरवाद की व्यंजना है, जिसे अनूदित पंक्ति अभिव्यक्त करनें में विफल ही नहीं रही बल्कि अन्य अर्थ की व्यंजना भी होने लगती है कि इस दर्दनाक हादसे से विरोधी दलके नेताओं के हृदय टूट गए अर्थात् उन्हें गहरा धक्का लगा, वास्तविकता में ऐसा नहीं है।

(8) रूथ वनिता ने जिन वाक्यों का अनुवाद अर्थ को आत्मसात कर अंग्रेजी भाषा के स्वरूप के अनुरूप किया है, वहाँ अनुवाद उत्कृष्ट दिखाई पड़ता है। उदाहरण के रूप में–

"वे ही कौन बड़ी तापें थीं' का अनुवाद 'They were no big guns' निश्चय ही मूल सा आनंद देते हैं।

"दा साहब का जीवन 'साधना का इतिहास' है।"

"Da Sabhab's life is a saga of dedication".

यह अनुवाद तो मूल से भी ज्यादा प्रभावशाली प्रतीत होता है।

इसी प्रकार

"खुद तो मरेगा ही, हमको भी ले डूबेगा।" का अनुवाद भी रूथ वनिता ने काफी प्रभावशाली ढंग से किया है। यह अनुवाद मूल के भाव को व्यक्त करने में पूर्णतः सफल रहा है। वे इसका अनुवाद इस प्रकार करती हैं– "He'll cook his own goose, and owns as well!"

निश्चय ही महाभोज के अनुवाद में सफलता कम विफलता ज्यादा हाथ लगी है। इस अनुवाद का सबसे कमजोर पक्ष संरचना एवं भाषागत–न्यास का रहा है। मूल पाठ में जिस प्रकार की संरचना संबंधी विशेषताओं का निर्वाह मूल लेखिका करती हैं, उसकी रक्षा अनुवादिका अपने अनुवाद में नहीं कर सकी हैं। वाक्यों की संरचना में मूल पाठ जैसी लय और प्रवाह को अनुवादिका कई स्थानों पर कायम नहीं रख पायी हैं। सबसे ज्यादा विफलता उपन्यास में व्यक्त व्यंग्य संबंधी पदों के अनुवाद में मिली है। कई स्थानों पर कुछ शब्दों का अनुवाद छोड़ दिया गया है जिससे पाठक की तन्मयता को ठेस पहुँचती है। इन कारणों से अनूदित कृति का प्रभाव मूल कृति की तुलना में क्षीण हो जाता है।

(ख) मुहावरे एवं लोकोक्तियों का तुलनात्मक विश्लेषण

लोकोक्तियाँ और मुहावरे समाज के लिए सामूहिक अनुभव की ठोस अभिव्यक्ति होते है। इसलिए डच भाषा में कहावत को 'दिन–प्रतिदिन के अनुभव की पुत्री' कहा गया है। इनमें मानव जाति के सम्पूर्ण अनुभवों का निचोड़ मौजूद रहता है। इसलिए ये भाषा में लवणवत् माने गए हैं। पुरखों के अनुभव भरे वचन और जनसाधारण की उक्तियाँ लोकोक्ति अथवा मुहावरे के माध्यम से जीवित रहते है। लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे भाषा को जितना अधिक प्रभावशाली बनाते हैं, अनुवाद करते समय वे उतने ही प्राणलेवा सिद्ध होते हैं।

सर्वप्रथम तो लोकोक्ति तथा मुहावरे का अन्तर समझना अनुवादक के लिए बहुत जरूरी है। लोकोक्ति में एक पूर्ण सत्य या विचार की पूरी अभिव्यक्ति होती है। वह दूसरे वाक्य में अंश नहीं बनती, अपितु स्वतंत्र होती है। मुहावरा स्वतंत्र वाक्य नहीं होता। वह किसी वाक्य में रखे जाने का सहारा खोजता है।

उदाहरणार्थ– 'महाभोज' में आए– 'कबर खोदना', 'हथियार डालना', 'साँप सूँघ गया' आदि मुहावरें हैं वहीं, 'होनी बड़ी बलवान' 'मत चूको चौहान' आदि लोकाक्तियाँ हैं। कहावतें तथा मुहावरें प्रायः किसी अनुभव सिद्ध कहानी का सार होते हैं। इनके माध्यम से की गई अभिव्यक्ति लोकजीवन और लोक चेतना की ज्यादा गहरी पकड़ से युक्त होती है। इसलिए उनकी लाक्षणिकता और व्यंजकता अपने में अर्थ गर्भत्व की एक पूरी परंपरा को व्यंजित करती है। लोकानुभव की कसौटी पर पूरी तरह खरा उतरने के बाद ही कोई कथन लोकोक्ति बनता है। ऐसी स्थिति में इसका अनुवाद एक बड़ी चुनौती होती है। लेकिन अनुवादक अगर मुहावरों एवं लोकोक्तियों के अनुवाद में स्रोत भाषा के

मुख्यार्थ और शब्द–सन्दर्भ पर ध्यान केन्द्रित रखे तो वह भारी गलतियों से बच सकता है। 'महाभोज' की अनुवादिका रूथ वनिता इसे पूरी तरह साधने में विफल रहीं। हालाँकि कुछ मुहावरों का उन्होंने सटीक अनुवाद कर उपन्यास में जान डालने की कोशिश की है परन्तु ज्यादातर जगह उन्होंने शाब्दिक अनुवाद का ही सहारा लिया है जिससे अनुदित उपन्यास में उन अर्थो की प्रभावी व्यंजना नहीं हो पाई मूल उपन्यास में है। अब हम लोकोक्तियों एवं मुहावरों के अनुवाद पर अलग–अलग विचार करेंगे।

लोकोक्तियों का अनुवाद

महाभोज की भाषा की ताकत और विश्वसनीयता दो अन्य बातों में भी देखी जा सकती है। पहला वहाँ–जहाँ मन्नू जी ने अनपढ़ लोगों के माध्यम से लोकभाषा का प्रयोग किया है और दूसरा, जहाँ मुहावरों का प्रयोग किया है। इस उपन्यास में प्रयुक्त मुहावरों एवं लोकोक्तियों ने कथ्य को जीवन्त बना दिया है। कुछ महत्त्वपूर्ण लोकोक्तियाँ जिनका प्रयोग उपन्यास में हुआ है– 'होनी बड़ी बलवान', 'मत चुको चौहान', 'जुमा–जुमा आठ दिन' तथा 'चतुर कौवा ही विष्ठा पर बैठता है' आदि हैं।

इन लोकोक्तियों में सांस्कृतिक–ऐतिहासिक सन्दर्भ का पूरा लोक अंतर्निहित होता है, इस लिए उनके अभिव्यंजक शब्द विशिष्ठ अर्थ–सन्दर्भों के वाहक होते हैं। वे सामान्य भाषा की सरल उक्तियाँ नहीं होती, बल्कि लोकानुभव की ऐसी ध्वन्यर्थमयी उक्तियाँ होती हैं जिनका अनुवाद बड़ा ही कठिन पड़ता है। उनमें सम्पूर्ण लोक–जीवन रचा–बसा रहता है। हर भाषा की लोकोक्तियां, नवीन उपमाओं और नवीन भावों की निजता में एक विशिष्ट ढंग की प्रतिभा का संकेत देती है। अतः लोकोक्तियों का अनुवाद करते समय दोनों भाषाओं के स्रोतों को भलीभांति समझ लेना चाहिए। शब्दशः अनुवाद

करने का प्रयास अधिकतर असफल हो जाता है। मूल कहावत के अलंकार और तुक बन्दीगत आग्रहों को ज्यों का त्यों दूसरी भाषा में लाने में अनुवाद असमर्थ रहता है। उदाहरण के रूप में महाभोज में आए लोकोक्ति– "चतुर कौवा ही विष्ठा पर बैठता है" (पृ. 155) का अंग्रेजी अनुवाद रूथ वनिता ने कुछ इस प्रकार किया है–

"It is a clever crow that sits on excrements" (p. 129)

यहाँ शब्दशः किया गया अनुवाद मूल में प्रयुक्त लोकोक्ति की लांक्षणिकता को व्यक्त कर पाने में असमर्थ है। होना तो चाहिए था कि अनुवादिका मूल के भाव को समझ कर उसके अनुरूप ही किसी अन्य लोकोक्ति या वाक्य को रखती।

स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में लोकोक्तियों का व्याख्यात्मक अनुवाद हो सकता है। सही अनुवाद के लिए स्रोत भाषा के अर्थ को पकड़ते हुए लक्ष्य भाषा में उस अर्थ को रक्षित रखना जरूरी होता है। इस प्रक्रिया को अपनाने से अनुवाद में अर्थ और भाव की पूरी रक्षा हो जाती है। 'महाभोज' के अनुवाद में रूथ वनिता ने इसका बहुत सफल प्रयोग किया है। उदाहरण के रूप में इन लोकोक्तियों को लिया जा सकता– "होनी बड़ी बलवान" (पृ. 23) 'Fate is all- powerful' (p. 15)

यह अनुवाद मूल के भाव को स्पष्ट करने में सफल रहा है। अनुवाद को प्रभावी बनाने के लिए स्रोत भाषा की लोकोक्ति के समान अर्थ वाली लोकोक्ति लक्ष्य भाषा में खोजी जानी चाहिए। प्रयास करने पर यह कार्य कठिन नहीं होता। रूथ वनिता ने भी इस पद्धति का सफल प्रयोग किया है। इन्होंने 'मत चूको चौहान' (पृ0 28) का अनुवाद 'Do or Die' (p. 19) जो 'मत चूको चौहान' के ऐतिहासिक–सांस्कृतिक संदर्भ को तो नहीं व्यक्त कर पा रहा

है परन्तु इससे निकलने वाले अर्थ कि 'अपना सब कुछ लगा दो' अर्थात् 'अपने आप को झोंक दो' की व्यंजना 'Do or Die' कराने में सफल रहा है।

मुहावरों का अनुवाद

महाभोज में प्रयुक्त मुहावरों और कुछ भाषिक प्रयोगों ने कथ्य को जीवन्त बना दिया है। परन्तु यही जीवंतता को अनुदित कृति में ढालना कठिन कार्य होता है। बहुत से मुहावरे ऐतिहासिक–पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हैं। इसके अनुवाद के समय उसमें निहित ऐतिहासिक संदर्भ एवं उससे निकलने वाले अर्थ को भी ध्यान में रखना होगा। महाभोज में आए मुहावरा – "गाँधी बाबा बन कर बैठे है।" (पृ. 21) इसका अनुवाद – "He sits here like a facsimile of Gandhi Baba!" (p. 13)

यहाँ शब्दशः अनुवाद किया गया है। इस अनुवाद से उसके मूल भाव को नही पकड़ा जा सकता।

कुछ ऐसे भी मुहावरे होते हैं जो लोकानुभव को विशिष्ट ढंग से सांकेतिक करते हैं। अत्यधिक प्रभावशाली ध्वनिपरक योजना के कारण मुहावरों का अनुवाद बड़ा ही कठिन काम है इसलिए अनुवाद का स्रोत भाषा में से किसी मुहावरे को लक्ष्य भाषा में लाते समय शब्दार्थ की समानता पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। चूँकि मनुष्य का स्वभाव एक है, भिन्न दिखाई देता हुआ भी वह भिन्न नहीं है, अतः अनेकता में एकता की खोज का सिद्धांत यहाँ हमारी समस्या का सही समाधान होता है। हर भाषा की प्रवृत्ति और प्रयोग–शक्ति अलग होने से मुहावरा अलग ढंग की शैली और अर्थव्यंजना ग्रहण कर लेता है। इसलिए उसका एक अलग ढंग का शब्द–बिम्ब और फिर शब्द–बिम्ब से अर्थ–बिम्ब बनता है। रूथ वनिता ने भी इसका कई जगहों पर सफल प्रयोग किया है। "कौन बड़ी तोपें थी"– "No big guns". कबर

खोद"– "dig my grave" "जीभ तालू से चिपक जाती है" – "Lose their voicer."

निश्चिय ही यहाँ रूप वनिता ने अनुवाद में ध्वनि बिम्ब तथा अर्थ बिम्ब के साथ ही भाव को भी सटीक रूप से व्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। कुछ महावरों के अनुवाद में अनुवादिका को सफलता हाथ नहीं लगी है, जैसे–

"साँप सूँघ गया"– "Seen a poisonous snake"

"हथियार डालना" – "Down arms"

यहाँ रूथ वनिता शब्दशः अनुवाद करने की कोशिश में इसके मूल भावों से भटक गई है। 'साँप सूँघ गया' का अर्थ यहाँ भयजनित खामोशी से है। परन्तु इस अनुवाद से यहाँ ऐसा कुछ भी व्यक्त नहीं हो पा रहा है। इसी प्रकार 'हथियार डालना' का अनुवाद 'Down arms' भी उपयुक्त भाव को व्यक्त नहीं कर पा रहा है। हिन्दी में 'हथियार डालना' मुहावरा का अर्थ होता है 'हार मानना' परन्तु रूथ वनिता इसका शब्दशः अनुवाद कर इसके भाव के साथ न्याय नहीं कर पाई हैं।

सारांशतः कहा जा सकता है कि किसी भाषा के मुहावरों में उसकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक सत्यता का परिचय मिलता है। मुहावरे भाषा को अधिक प्रभावशाली एवं व्यंजक बनाते हैं। इसी प्रकार पाठ की प्रभावशीलता और व्यंजना को अनुवाद में लाने के लिए अनुवादक को बड़ी मशक्कत करनी पड़ती है। अनूदित कृति में जहाँ कुछ कमियाँ दिखाई देती है वहीं अनुवादिका का कार्य कई जगहों पर सराहनीय भी है। मूल उपन्यास में मुहावरों की शब्दावली जितनी विषयानुकूल है उतना ही अनुवादिका का शब्दावली चयन अथवा संदर्भगत मुहावरे का चयन सार्थक रहा है। हालाँकि कई स्थितियों में अनुवादिका मूल कृति में आए मुहावरों के प्रति न्याय नहीं कर पाई है।

चौथा अध्याय

महाभोज के अंग्रेज़ी अनुवाद के सन्दर्भ में सामाजिक, सांस्कृतिक पदों के अनुवाद की समस्या एवं संबंधित विश्लेषण

'महाभोज' के अंग्रेजी अनुवाद के संदर्भ में सामाजिक, सांस्कृतिक पदों के अनुवाद की समस्याएँ एवं विश्लेषण

किन्हीं भी दो भाषाओं की प्रकृति सर्वथा एक–सी नहीं होती, न उनके बोलने वालों की चिंतन शैली सदा समान होती है और नहीं सांस्कृतिक परम्पराएँ पूरी तरह मेल खाती हैं। इसलिए अनुवादक को मूल स्रोत भाषा में व्यक्त सामग्री को लक्ष्य भाषा में संप्रेषित करने के लिए विविध प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के साहित्यिक, -सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, सामाजिक और धार्मिक परिवेश में जितना अधिक अंतर होता है उतनी ही अधिक कठिनाइयों का सामना अनुवादक को करना पड़ता है। भाषाओं की पारिवारिक भिन्नता भी काफी बड़ी समस्या उत्पन्न करती है। संसार की अधिकतर भाषाएँ किसी न किसी प्राचीन भाषा के सांस्कृतिक अनुभव को भी स्वीकार करती हैं और नए शब्दों के निर्माण में आधारभूत भाषा को ही अपना श्रोत मानती हैं।

संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, अरबी आदि भाषाएँ अनेक भाषाओं की आधार भाषाएँ हैं। अतः एक ही भाषा को आधार भाषा माननेवाली भाषाओं में परस्पर अनुवाद करने में जहाँ सुविधा होती है, वहाँ आधार भाषा की भिन्नता होने पर कठिनाई भी कम नहीं होती। इन कठिनाइयों के कारण अनुवादक की वास्तविक परीक्षा हो जाती है।

आधुनिक युग अनुवाद का युग है। अनुवाद ही एक ऐसा साधन है, जिसकी सहायता से कोई भी साहित्य–रसिक संसार भर के उत्तम साहित्य से परिचित हो सकता है। संसार भर की भाषाओं को सीखकर उनमें विद्यमान मूल साहित्य का रसास्वादन कर पाना संभव नहीं है। फिर भी अच्छे साहित्य

प्रेमी किसी एक भाषा के श्रेष्ठ साहित्य का रसास्वादन करके ही तृप्त नहीं होना चाहते। उनकी इच्छा अधिक से अधिक देशों और भाषाओं के साहित्य का रसास्वादन करने के लिए बनी रहती है। उनकी सहायता केवल अनुवादक ही कर सकता है। इस प्रकार अनुवादक का दायित्व बहुत बड़ा हो जाता हे।

आज वैचारिक दृष्टि से तथा ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में जो प्रगति हो रही है, उससे सम्पूर्ण विश्व छोटा होता जा रहा है। आज व्यक्ति भौगोलिक सीमाओं को पार करते हुए वृहत्तर संबंधों की स्थापना कर रहे हैं। इससे व्यक्ति के समग्र ज्ञान का क्षितिज विस्तृत हो रहा है और उसका संबंध अन्य भाषा भाषी समुदायों से जुड़ रहा है, जो विश्व–बंधुत्व की भावना पैदा करने में सहायक है। इसके साथ ही ज्ञान के विश्वव्यापी प्रसार से मानव चेतना के नये आयामों में विस्तार आया है। भाषाई सीमाओं को लाँघते हुए हम यह अनुभव करते हैं कि अपनी भाषा से अन्य किसी भाषा का ज्ञान होने का अर्थ है तीसरी आँख या तीसरे कान का होना। इस तीसरी आँख या तीसरे कान की उपलब्धि अनुवाद से ही संभव है जो हमें अन्य भाषाओं में ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे कार्यों का परिचय देता है।

विश्व की लगभग सभी सभ्यताओं और संस्कृतियों के विकास में अनुवाद की विशेष भूमिका रही है। विभिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों को जानने तथा समझने के लिए अनुवाद को माध्यम बनाना हमारी नियति रही है।

वास्तव में अनुवाद एक सांस्कृतिक सेतु का काम करता है। विश्व की इस सांस्कृतिक एकता में इसका आविष्कार मानव सभ्यता के विकास के साथ हुआ, जिसे मनुष्य ने बहुभाषिक स्थिति की विडम्बनाओं से बचने के लिए

किया था। अनुवाद के माध्यम से मानव में व्याप्त सार्वभौमिक, ऐतिहासिक सामाजिक एकता के दर्शन होते हैं, जिसमें भाषाओं के बाहरी भेद के होते हुए भी मानवीय अस्तित्व के समान तत्वों का परिचय मिलता है।

प्राचीन काल में अनुवाद सर्जनात्मक साहित्य तक ही सीमित था और जबकि आज वह सामान्य जीवन–व्यवहार की वस्तु बन गया है। विभिन्न राष्ट्रों की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक निधियाँ हमारे समक्ष हैं। अनुवाद के माध्यम से हम इन निधियों का आदान–प्रदान करते हैं और एक–दूसरे की सांस्कृतिक विरासत में भागीदार बनते हैं। अनुवाद की इस परम्परा से यह जानकारी मिल जाती है कि किन–किन भाषाओं या किन–किन देशों में साहित्य सृजन कैसा हो रहा है और वह अन्य देशों से कितना समान और विषम है।

साहित्य के अनुवाद का इतिहास विश्व में काफी प्राचीन है। अनुवाद ने न केवल विभिन्न साहित्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है वरन् भाषा के विकास में भी इसके योगदान को नकारा नहीं जा सकता। विश्व के विभिन्न साहित्यों के बीच जो परस्पर आदान प्रदान हुआ है वह अधिकांशतः अनुवाद के माध्यम से ही हुआ। इससे विभिन्न भाषाओं के साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन में काफी सहयता मिलती है। इससे मानवीय ज्ञान के विविध सन्दर्भों, संकल्पनाओं सिद्धांतों आदि की जानकारी मिलती है।

स्रोत भाषा के पाठ का पूर्णतया अनुवाद नहीं किया जा सकता। वास्तव में पाठ में कई ऐसे भाषिक रूप होते हैं जिनका अनुवाद नहीं हो पाता। इसमें कई बार भाषापरक कठिनाइयाँ सामने आती हैं और कई बार सामाजिक एवं सांस्कृतिक। भाषापरक सीमा से अभिप्राय है, स्रोत भाषा के शब्द, वाक्य रचना आदि पर्यायवाची रूप का लक्ष्य भाषा में न मिलना। सामाजिक–सांस्कृतिक

अभिव्यक्तियों के अंतरण में भी काफी सीमाओं का सामना करना पड़ता है, क्योंकि प्रत्येक भाषा का संबंध अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था से जुड़ा हुआ होता है। वस्तुतः भाषापरक और सामाजिक–सांस्कृतिक समस्याएँ एक–दूसरे के साथ गुँथी हुई हैं। अतः उनका विवेचन एक–दूसरे को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। वास्तव में सामाजिक–सांस्कृतिक स्थितियों के अलगाव से उत्पन्न समस्याएँ अनुवाद की सबसे जटिल समस्याएँ हैं।

भाषा ओर संस्कृति का संबंध अटूट है। इससे किसी भी समाज के बारे में काफी सूचनाएँ मिल जाती हैं, अतः इन सूचनाओं से भाषिक रूपों का अंतरण नहीं हो पाता। वास्तव में मानव अभिव्यक्ति के एक रूप में भाषा में, भौगोलिक, ऐतिहासिक और सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों का समावेश होता जाता है जो एक भाषा से दूसरी भाषा में भिन्न प्रतीत होते हैं। अतः स्रोत भाषा के कथ्य को लक्ष्य भाषा में पूर्णतया संयोजित करने में अनुवादक को कई बार कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यह बात अवश्य रहती है कि सम–सांस्कृतिक भाषाओं की अपेक्षा विषम सांस्कृतिक भाषाओं के परस्पर अनुभव में कुछ हद तक अधिक समस्याएँ हैं। वस्तुतः जब दो संस्कृतियाँ समान हो या एक–दूसरे से संबद्ध हों, तब अनुवादक को यह छूट होनी चाहिए कि वह लक्ष्य भाषा की सांस्कृतिक शब्दावली को श्रोत भाषा की प्रकृति के प्रशंसानुकूल बदल ले। यदि विषम संस्कृति हो तब भी प्रसंगानुसार परिवर्तन अत्यंत आवश्यक है अन्यथा उससे सटीक अर्थ की प्रतीति नहीं हो पाएगी।

सम–सांस्कृतिक भाषाओं में भारत की हिन्दी, बांग्ला, तमिल, तेलुगु, मलयालम, मराठी आदि भाषाएँ आती हैं। इनके परस्पर अनुवाद में जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। वे कुछ ही अभिव्यक्तियों में मिलती हैं। तेलुगु में

घनिष्ठ मित्र को 'प्राण मित्रुडु' और बचपन के दोस्त को 'बाल्यसवे–हितुडु' कहा जाता है, किन्तु 'बालसनेहितुडु' के लिए हिन्दी में 'लंगोटिया यार' वाली अभिव्यक्ति उपयुक्त नहीं बैठती। विषम सांस्कृतिक भाषाओं में इस प्रकार की समस्याएँ बहुत अधिक मिलती है। देवर–भाभी, सास–ननद, जीजा–साली का अनुवाद यूरोपीय भाषा में नहीं हो सकता, क्योंकि भाव की दृष्टि से इसमें जो सामाजिक सूचना निहित है वह शब्द के स्तर पर नहीं आँकी जा सकती। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति के कर्म का अनुवाद न तो Action हो सकता है और न Performance क्योंकि कर्म से यहाँ पुनर्जन्म निर्धारित होता है जबकि Action और Performance में ऐसा भाव नहीं मिला। इस प्रकार यह उन रूपों का प्रतिस्थापन नहीं है जो एक ही विषय वस्तु से जुड़े हुए हैं।

'महाभोज' जैसे उपन्यास के अनुवाद में सबसे महत्वपूर्ण बात होती है सामाजिक–सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों का अनुवाद क्योंकि हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा की संस्कृति तथा सामाजिक परंपराएँ भिन्न होती है।

'महाभोज' मन्नू भंडारी का ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है। ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित होने के कारण इसमें सामाजिक–सांस्कृतिक शब्दों की प्रचुरता है। भाषा भी संस्कृति का अंग होती है। अतः किसी भाषा के शब्दों में उसके सांस्कृतिक तत्व अंतर्निहित होते हैं। उन शब्दों को उन्हीं लक्षणों एवं भावों के साथ दूसरी भाषा में व्यक्त करना आसान नहीं है। इस सन्दर्भ में अगर 'महाभोज' के अनुवाद पर विचार करें तो मिश्रित सफलता हाथ लगती है। 'रूथ वनिता' कहीं–कहीं तो शब्दों के सामाजिक–सांस्कृतिक निहितार्थ को समझ कर अंग्रेजी में सटीक अनुवाद करने में सफल रहीं हैं तो कई जगहों पर शब्दों से जुड़े सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को नहीं समझ पाने के कारण भारी गलती भी कर जाती हैं।

'महाभोज' के अनुवाद की मूलभूत समस्याओं में से एक है उन सांस्कृतिक में गहरे पैठ होते है और पाठ में ऐसे शब्दों की उपस्थिति मात्र से उस भावपरक वातावरण की सृष्टि हो जाती है, जो मन्नू भंडारी हिन्दी भाषी पाठकों को सम्प्रेषित करना चाहती हैं। उदाहरण के रूप में महाभोज के एक पैरा को लिया जा सकता है।

"लेकिन लाश के जाते ही एक अजीब तरह का सन्नाटा छा गया वहाँ तनाव–भरा सन्नाटा। गाँव के पूरब में एक बड़ा सा अखाड़ा है जुम्मन पहलवान का जिसमें तीस–चालीस पट्ठे लाल लँगोटे बाँधकर वर्जिश करते रहते है रात–दिन। दंड पेलना, लाठी भाँजना, मुगदर घुमाना, कुश्ती लड़ना..... .....कुछ न कुछ चलता ही रहता है। शाम के समय काम से लौटते हुए लोग कुछ देर खड़े होकर तमाशा जरूर देखते। यह अखाड़ा गाँव वालों के मनोरंजन का केन्द्र भी है, और आतंक का स्रोत भी। इसी अखाड़ें की आबादी जब अपनी तेल–पिलाई हुई लाठियाँ लेकर गाँव के गली–बाजारों में उतर आती है तो सारे गाँववालों को साँप सूँघ जाता है और सबकी जीभ तालू से चिपक जाती है। जैसे ही बिसू की लाश चीर–फाड़ के लिए शहर गई अखाड़े के ये लठैत गश्त लगाने लगे गाँव में। उसके बाद लोगों के मुँह से आहें भले ही निकलती रही हों, बात नहीं निकली। बिसू के मारने का तरीका चाहे न समझ में आ रहा हो, पर मरवाने वाले का नाम शायद सबके मन में बहुत साफ था। नाम भी, कारण भी। पर केवल मन में। बयान के समय भी जबान पर कोई नहीं लाया। बिसू का बाप भी नहीं।"

महाभोज, पृ. – 26

इसका अनुवाद रूथ वनिता ने इस प्रकार से किया है–

"But once the corpse was taken away, a stranger silence fell. A tension filled silence. East of the village was Jumman Pahalwan's wrestling ground, where thirty to forty young men in red loincloths were to be seen working out, day and night? Weight lifting, fencing with lathi, mace fighting wresting - something or other was always going on. People returning home from work at dusk generally stopped to watch the fun. This was a source of entertainment for the villagers, and also a source of terror. When the frequenters of this wrestling ground armed with their oiled lathi, came down to the village lanec and markets, all the villagers would act as if mesmerized by a snake, and would lose their voices. As soon as Bisu's Corpse was sent the city for post mortem, there lathi wielding youths began to patrol the village. After that sighs might escape peoples lips but no word would. They might not be sure how Bisu was killed but the name of the killer was probably clear in the mind of all. The name, and the reason. But only in their minds. No one utteret the name while giving evidence. Not even Bisu's father.

"The Great Feast', Page - 18

यहाँ 'अखाड़ा', 'पट्ठे' 'लाल लंगोटे, 'मुगदर' 'दंड पेलना' आदि ऐसे ही शब्द हैं। पट्ठे का शाब्दिक अनुवाद रूथ वनिता ने "Young men" किया है। परन्तु यह न तो गाँव के उन बाहुबली युवाओं का भाव प्रकट करता है और न ही उस आतंकित कर देने वाली कद–काठी का। बल्कि इसके स्थान पर Hunk शब्द इन भावों को ज्यादा निकट जाकर अभिव्यक्त करता है। ठीक वैसे ही 'Red Loin Cloths' कह देने से उस संज्ञा का बोध तो होता है जो 'लंगोटे' के रूप में हिन्दी में प्रचलित है किन्तु संज्ञा के साथ संश्लिष्ट रूप से उपस्थित उस भाव का सृजन नहीं हो पाता जो भारतीय ग्राम में लाल लंगोटे

में किसी पट्ठे का अखाड़े में तैश में विचरने से होता है। लेखक किसी चरित्र के बाह्य विवरणों अथवा प्रसंग के सूक्ष्म विवरणों का उल्लेख दो कारणों से कर सकता है एक उन पृष्ठभूमि व प्रसंगों के बीच से चरित्र–विशेष या घटना–विशेष को और अधिक तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करने के लिए अथवा प्रत्यक्षतः उस विवरण से कथा में परिवर्तन आता है। प्रायः पाठक के बोध को तीव्र करने और अभिव्यक्ति सौन्दर्य व अंतर्वस्तु तक पाठक को पहुँचाने का यत्न ही अधिक होता है। अखाड़े के पट्ठा के प्रसंग में यही यत्न किया गया है। जाहिर है जिन दो पंक्तियों में इस वातावरण का सूक्ष्म वर्णन किया गया है, वह अपने पहले की पंक्ति के 'सन्नाटे' और बाद की पंक्तियों में सब कुछ जानते हुए भी लोगों की चुप्पी के बीच की वह आतंकित करने वाली पृष्ठभूमि का निर्माण करती है जो मन्नू भंडारी अभिव्यक्त करना चाहती हैं। किन्तु अंग्रेजी में 'Wrestling ground', 'Young men', 'red loincloths' उस भाव की सृष्टि भी नहीं कर पा रहे और पाठक के बोध को तीव्र करने की बजाय गैर भारतीय पाठक को एक वस्तुनिष्ठ शब्द या पद–भर से परिचित कराता है, जो परंपरा में अवस्थित अपने भावों से पूर्णतया हीन है। अनुवादक इस सन्दर्भ में अनुवाद करते हुए जागरूकता का परिचय नहीं देता। ठेठ मुहावरों के प्रसंग में भी जागरूकता दिखाने या भाव को पकड़ने का उपक्रम नहीं दीखता। "साँप सूँघ जाना" एक मुहावरा है। इस मुहावरे का 'साँप' कोई संज्ञा नहीं बल्कि मुहावरे का एक हिस्सा है। स्पष्ट है सांप देखकर कोई चौंक गया, यह भाव इस पंक्ति में नहीं है। बावजूद इसके अनुवादिका इस पदबंध के लिए 'Mesmerised by a snake' का प्रयोग करती हैं। यह सर्वथा अनुचित व निरर्थक है। 'Snake' की सार्थकता यहाँ प्रकट नहीं होती। बल्कि केवल 'Mesmerised मात्र कह देने से सांप सूंघ जाने का भाव प्रकट हो जाता है।

ऐसा ही एक शब्द स्फीत भाव–सौन्दर्यहीन अनुवाद का उदाहरण है। 'Sighs might escape peoples lips but no word would'.

यह शब्दशः अनुवाद का ही उदाहरण है। इससे साफ तौर पर इतना भर लिख कर व्यक्त किया जा सकता था– "They all fell but no one expressed in world." यह उस भाव की तथा वाक्य संरचना में मौजूद शब्द सौन्दर्य की सृष्टि न करने वाले अनुवाद की वनिस्पत कहीं अधिक औचित्यपूर्ण लगता है।

ऐसे ही कई अन्य प्रसंग भी हैं जिसके सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को समझे बिना शब्दशः अनुवाद 'रूथ वनिता' ने किया है। ऐसा ही एक अन्य प्रसंग है– "कोई और मौका होता तो धकिया देता थानेदार पर आज गम खा गया। ऊपर से आदेश आया हुआ है.....किसी के साथ किसी तरह की कोई सख़्ती न बरती जाए। ठीक है, उसका क्या है.....वह कुछ भी करेगा–कहेगा नहीं। इन देहातियों से पाला पड़ेगा तो एक दिन में पता लग जाएगा। शहरी लोग भले ही नरमी से काबू में आ जाते हों पर ये देहाती भुच्च ? डंडे के बिना कोई रास्ते पर ला सकता है इन्हें भला ? अब इस बिन्दा को ही देखो अभी तक पता नहीं है साले का। अजीब सिरफिरा है यह आदमी। देहात का आदमी जब एक बार शहर की हवा खा लेता है तो फिर बिल्कुल लाट साहब ही समझने लगता है अपने को। मेरी तो फिर से किरकिरी करवाकर रख देगा। थानेदार के हुकूम पर आदमी आए नहीं..... थानेदार हुआ या स्साला.....खैर छोड़ो, मेरा क्या है ? सख्ती का हुकूम होता तो मुश्कें बाँधकर ले आता उस हरामी को। अब नरमी से बुलाएँ एस. पी. साहब खुद।"

'महाभोज' पृ. – 81

इस अवतरण में 'धकियाना','पाला', 'गम खाना', 'भुच्च', 'सिरफिरा' लाट साहब, मुश्क बाँधना, आदि ऐसे शब्द है जिनके सामाजिक–सांस्कृतिक सन्दर्भ एवं मायने जाने बिना अनुवाद करने पर प्रभावपूर्ण वातावरण सृजित नहीं हो पाता जो मूल को प्रभावी बनाता है दूसरे इससे भ्रम की भी गुंजाइश बन जाती है। अब देखते है रूथ वनिता इसके अनुवाद में कहाँ तक सफल हो पाई हैं–

"Had it been any other occasion, the sho would have driven them off, but today he refrained from doing so. Orders had come from above that no one was to be treated harshly. Fine, why should be bother-he would say and do nothing. Once the SP had to deal with these rustice he would learn a lesson perhaps cityfolk could be controlled without harshness, but these village bumpkins? Could anyone bring them to heel without using the rod? Look at this Binda, for example no sign of him yet. Obstinate as a mule. Once a villager gets to breathe the air of the city he starts thinking no end of himself. He's making me look like a fool. That a man should not turn up when commanded to do so by the Sho as if the Sho is a well, never mind, where is it to me? O' were it not for the orders not to be harsh, I'd have dragged him here by force. Well, no let the SP himself fetch him here with mildness."

'The Great feast', Page - 67

बात 'धकियाना' से शुरू करते हैं। धकियाना का अर्थ सिर्फ धक्का देकर बाहर निकाल देना ही नहीं है बल्कि इसके साथ 'उपेक्षा पूर्ण रवैया' का भाव भी जुड़ा हुआ है। परन्तु अनुवादिका ने इसके लिए 'Driven' शब्द का प्रयोग किया है जो ढ़केलने के अर्थ को ध्वनित करता है लेकिन इससे 'धकियाने'

शब्द से जो पूरा अर्थ–बिम्ब खड़ा होता है वो इस 'Driven' शब्द से नहीं हो पा रहा है। इसके आगे एक पद है 'गम खा गया' इसके लिए 'रूथ वनिता' ने 'refrained' शब्द का प्रयोग किया है। जिसका सामान्य अर्थ होता है 'रूकना' परन्तु यहाँ 'गम खा गया' से जो अर्थछवि उभरती है वो दारोगा की खीज को व्यक्त करती है अर्थात दरोगा के मन मसोस कर रह जाने की प्रक्रिया को मन्नू जी ने कम शब्दों में 'गम खा गया' के द्वारा व्यक्त कर दिया है परन्तु वही भाव अनुवाद में व्यक्त नहीं हो पा रहा है। इसी क्रम में एक वाक्य आया है 'इन देहातियों से पाला पड़ेगा तो।' इसमें दो शब्द विशेष महत्व का है– 'देहातियों तथा पाला। देहातियों का अनुवाद 'rustics' किया गया है जो इसके लिए उपयुक्त है। वहीं पाला के लिए 'deal' शब्द का प्रयोग कहीं से भी उपयुक्त नहीं लगता। 'पाला पड़ना' जैसे शब्द गहरे सामाजिक अनुवाद का निचोड़ होते है। इनके शब्द से ज्यादा इनसे उभरने वाली अर्थछवि महत्त्वपूर्ण है। दरअसल यहाँ देहातियों से सामना होने पर होने वाली कठिनाइयों की ओर संकेत किया गया है। इसी पंक्ति में आगे एक पद है 'पता लग जाएगा' इसका अनुवाद Learn a lesson उस व्यंग्याताकता को नहीं व्यक्त कर पा रहा है परन्तु उस अर्थ को सम्प्रेषित करने में सफल रहा है।

'देहाती भुच्च' के लिए प्रयुक्त शब्द obstinates as mule है जो मूल शब्द के काफी करीब है। इसी अवतरण में एक पद है 'आदमी जब एक बार शहर की हवा खा लेता है' इसमें प्रयुक्त पद 'हवा खा लेता है' का अनुवाद "Gets to breathe the air of city" किया गया है। यहाँ अनुवादिका शाब्दिक अनुवाद के चक्कर में मूल अर्थ से भटक गई है। दरअसल में यहाँ 'हवा खाना' एक मुहावरा है जिसका अर्थ होता है प्रभावित होना या उसी के रंग में रंग जाना। लेकिन अनुवादिका ने "breathe the air" लिख कर इस अर्थ के साथ कहीं से भी न्याय नहीं किया है।

इसी प्रकार एक शब्द आया है 'लाट साहब' जिसका अनुवाद 'रूथ वनिता' ने "No end of himself" के रूप में किया है। लेकिन भारतीय समाज में लाटसाहब कहने से एक विशेष व्यंग्यात्मक अर्थ की व्यंजना होती है। इस शब्द का प्रयोग उसके लिए किया जाता है जो अपने आप को ही सबका मालिक मान लेता है अर्थात जो बड़वोलेपन के शिकार होते हैं उन्हें 'लाट साहब' जैसे संबोधनों से उनका मजाक बनाया जाता हैं। इसके साथ जुड़े सामाजिक–सांस्कृतिक सन्दर्भ ही इसे विशेष अर्थप्रदान करते हैं, इसी कारण इसका सटीक अनुवाद करना कठिन हो जाता है।

कई बार बात ही बात में लोग ऐतिहासिक पौराणिक घटनाओं या संबंधों की तुलना वर्तमान सन्दर्भ की घटना की व्याख्या करने के लिए उपयोग करते हैं। लेकिन यह उपयोग उस भाषा के सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश से गहरे रूपों में जुड़ा होता है। जब हम कहते है कि 'श्रवण जैसा बेटा है' तो हमारे मानस पटल पर फौरन श्रवण की कर्तव्यनिष्ठता एवं माता–पिता की अद्‌भुत सेवा का बिम्ब सामने तैरने लगता है। ऐसे प्रसंगों को दूसरी भाषा में अनुवाद करना टेढ़ी खीर है। इसी प्रकार का एक प्रसंग 'महाभोज' में भी आया है।

"गाँव की भीड़ बड़ी हुलसकर देख रही है यह सब दृश्य। दा साहब के इस बड़प्पन के आगे सभी नतमस्तक हो आए हैं। बड़े–बूढ़ों को तो शबरी और निषाद की कथाएँ याद हो आईं। किसी–किसी को ईर्ष्या भी हो रही है हीरा से।"

– 'महाभोज' पृ. – 63

इसका अनुवाद इस प्रकार किया गया है– The crowd of villagers delightedly drank in the scene. All were deeply impressed Da Saheb's greatness of heart. The elderly recalled the stories of Sri Ram's kindness to Shabri and Nishad. Some were even enviers of Hira.

— 'The Great feast' Page - 50

मन्नू भंडारी 'शबरी' एवं 'निषाद' की तुलना वर्तमान सन्दर्भ से कर इसकी गहनता को तीक्ष्णता प्रदान करती है। पाठक के सामने यह स्पष्ट हो जाता है कि बड़े–बूढ़े दा साहब को भगवान राम के समान दयालु, महान एवं गरीबनवाज -समझने लगे जो राजा होते हुए भी अपने गरीब प्रजा का आतिथ्य स्वीकार कर उसे गले लगाया। इस घटना का अवक्षेपण दा साहब एवं हीरा के सन्दर्भ में होना यह साबित करता है कि सांस्कृतिक तत्व भाषा से गहरे रूपों में जुड़े होते हे अतः किसी भाषा को पूर्णतः समझने के लिए उसके सामाजिक–सांस्कृतिक सन्दर्भ को भी समझना जरूरी है। रूथ वनिता ने इसका अंग्रेजी अनुवाद करते समय 'Sri Ram Kindness' पद जोड़कर घटना के मूल भाव की तरफ संकेत करने की कोशिश की है, परन्तु इतने से बात नहीं बनती दिखती। कितने अंग्रेजी भाषी विदेशी लोग 'शबरी–निषाद' कथा को जानते होगें? अतः यह अनुवाद निश्चय ही उन्हें अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया में बाधक होगा। रूथ वनिता के पास इसके लिए दो रास्ते थे। पहला तो वे अगर मूल को रखना जरूरी समझती हैं तो इसके लिए जरूरी है कि शबरी, निषाद से जुड़े प्रसंग तथा उसके मूल कथ्य के बारे में 'फुटनोट' के रूप में शामिल करें। दूसरा रास्ता यह हो सकता है कि अंग्रेजी भाषा एवं संस्कृति से जुड़े समान भाव वाले प्रसंग को यहाँ रखा जा सकता है।

जहाँ तक आँचलिकता का सवाल है, उपन्यास के आरंभ में उतना आँचलिक शब्द नहीं आया है, जितना कि उत्तरार्द्ध में। हीरा जरोवर, गाँव वाले आदि सभी के संवादों में पूरी तरह आँचलिकता का पुट है। देखते है कि क्या Ruth Vanita इन आँचलिकता को अनुवाद में सम्प्रेषित कर पाई हैं?

पृष्ठ 95 में हीरा और सक्सेना के बीच का एक संवाद 'देखो, जो कुछ पूछा जाए, साफ–साफ कहना।..... सच–सच कहो!'

'हम झूठ काहे बोली सरकार ? जो कहब सच ही कहब!'

.....'सच कही सरकार, हमार बिसू कौनौ दिन जुलुम नाहीं कीन्हा रहा, कौनौ गलत कामों नाहीं कीन्हा रहा।' फिर एकाएक याचना–भरे स्वर में उसने पूछा, 'आपै बताओं सरकार.....काहे लै गवा रहै हमार बिसुआ को ? बेगुनाह का जेहल भैजे काऔ कौनौं कानून होत है का ? .....'हाँ सरकार, तबै छुटमल रहा! हम तो बड़ा जस गाइत हैं नई सरकार का। हमार बिसू घर तो आवा! अउर दा साहब तो देवता आदमी हैं, सरकार! हम गरीबन का कइसा मान दिहिन। ऊ दिन हमार घरै आ.....हमका अपने सँग लिवाय लै गएं.....नहीं तो को पूछत है गरीबन का दुख–दर्द.....

– महाभोज, पृ. 95

दूसरी तरफ जोरावर है जिसकी भाषा ठेठ जाट की है–

"कान खड़े हुए जोरावर के लेकिन निहायत लापरवाही से अपने जोरावरी अंदाज में ही पूछा, 'क्या लिख दिया है उस हरामखोर ने अपने फैल में ?

– महाभोज, पृ. 137

....."खाना खाकर चलने से पहले एक बार जोरावर ने फिर कहा,'आप देख लीजिए दा साहब, यह फैल–फूल का मामला हम नहीं जानते।..... फिर एक क्षण रूककर बोला– 'और ससुरे उस बिंदा को भी ठीक करवाओ। क्या फैल मचा रखे हैं उसने ?

– महाभोज, पृ. 141

उपर्युक्त Paragraph का अनुवाद क्रमशः Ruth Vanita ने इस प्रकार किया है:–

(1) 'Why would I tell lies, Sarkar? Whatever I say will be the truth!'

The Great Feast, P.77

(2) 'Truly Sarkar, our Bisu never hurt anyone never, did anything wrong', 'Then he asked plendingly 'you tell me, Sarkar, where did they take our Bisua? Is there any law which sends innocent people to jail.

x x x x

"Four years sarkar! just as they had suddenly taken him away one day, they suddenly released him one day'.....we always sing the praiss of the new government. our Bisua came home! And Da Saheb is a god on earth Sarkar. How he honoured us poor people. That day he came to my house, took me with him otherwise, who cares about the sorrow of the poor?

Ruth Vanita, - P 79

(3) Jorawar did not understand such niceties so he asked directly :-

"Tell me clearly, what has that saxena written against me in his file?'

The Great Feast, P.116

As Jorawar was leaving after Lunch, he said once more, 'Da Saheb, please deal with the situation. I don't understand these files and fools. All I know is

its up to you to see that nothing happens to me.'.....'And set that bastard Binda right. What does he mean by raising such a racket ?'

The Great Feast, P.118

उपर्युक्त अनुवाद को देखने से स्पष्ट हो रहा है कि अनुवादिका मूल कहानी में आए आँचलिकता को अनुवाद में स्पष्ट नहीं कर पाई हैं। हीरा का भोजपुरी और जोरावर का ठेठ जाट भाषा एक ही सपाट लहजे में अनूदित किया गया हैं। इससे आम पाठक मूल उपन्यास की तरह ही अनूदित उपन्यास में ठीक उसी तरह गोते नहीं लगा सकता जिस तरह वह मूल में लगाता है।

जब हम साहित्यिक अनुवाद का भाषा के साथ–साथ सांस्कृतिक रूपान्तर भी करते हैं तब लक्ष्यभाषा और लक्ष्य संस्कृति में मूल की संस्कृति को प्रस्तुत करते समय अनुवादक की अधिक सर्तकता से इस विविधता की गुत्थी को दक्ष हाथों से सुलझाना पड़ता है। परंतु रूथ वनिता ने सीधे सपाट शब्दों में इसका अनुवाद कर सामाजिक –सांस्कृतिक वातावरण के उस प्रभाव को पैदा नहीं कर पाई हैं। जो मूल हिन्दी के समस्याओं को गहनता प्रदान करती हैं। इन प्रसंगों के सपाट अनुवाद से दलितों एवं शोषकों की सामाजिक –सांस्कृतिक स्थिति तथा उनके बची के तनाव को सूक्ष्मता से अनूदित पाठ में नहीं उतारा जा सकता है।

रूथ वनिता ने कई ऐसे शब्दों का केवल लिप्यांतरण कर दिया है जो केवल भारतीय समाज की विशेषताओं को व्यक्त करता है। इसके लिप्यांतरण को पढ़कर विदेशी पाठकों को इसके विशेष सामाजिक संदर्भ को समझना संभव नहीं है। ऐसे ही दो शब्द हैं 'हरिजन' और 'चमार' जिसका अनुवाद रूथ वनिता ने क्रमशः Harijan and Chamar के रूप में किया है। दरअसल ये शब्द भारतीय जाति व्यवस्था से जुड़े हुए हैं। जाति व्यवस्था केवल भारतीय समाज में ही पाई जाती है। अतः अन्य देश के अंग्रेजी भाषी

लोगों के लिए इस शब्द से जुड़े विशेष अर्थ को समझना मुश्किल होगा। हरिजन जाति व्यवस्था के शूद्र वर्ण से आते हैं जो अस्पृश्य माने गये हैं। इनके साथ बहुत ही अमानवीय व्यवहार किया गया है। जाति व्यवस्था में निम्न स्थिति के कारण इनका शोषण उच्च जाति के लोगों ने बहुत किया है। अतः उपन्यास में हरिजन या चमार शब्द आते ही हिन्दी भाषी पाठक के सामने इससे जुड़ी पूरी स्थिति या बिम्ब खड़ी हो जाती है परन्तु वही बिंब अंग्रेजी भाषी पाठकों के सामने नहीं बन पाती है। बल्कि ये शब्द उनके अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया को बाधित करते हैं। इन पाठकों के सामने इस शब्द के पूरी सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ का स्पष्ट किए बिना इस उपन्यास की मूल संवेदना या समस्या से जोड़ पाना संभव नहीं होगा।

वैचारिक आदान–प्रदान की चेतना से सामाजिक वैचारिकता में एक नई भूमि तैयार करने में अनुवाद का महत्वपूर्ण योगदान होता है। 'महाभोज' का यह अनुवाद भारतीय राजनीति, सामज एवं संस्कृति में व्याप्त समस्याओं को उसी तनाव के साथ नहीं व्यक्त कर पाया है जो मूल में है इसके कारण यह अनूदित पाठ पाठकों को उसी रूप में आन्दोलित नहीं कर सकता जिस रूप में मूल पाठ करता है। इस कारण इस अनुवाद की सामाजिक उपादेयता कुछ घट जाती है इतना होने पर भी यह अनुवाद भारतीय सामाज एवं संस्कृति में व्याप्त समस्याओं, राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं दलित शोषण पर प्रकाश तो डाल ही देता है। इससे अंग्रेजी भाषी पाठक भी उपन्यास में व्यक्त सामाजिक समस्याओं से परिचित हो जाते हैं।

आज जरूरत है कि अनुवाद के माध्यम से एक–दूसरे के समाज एवं संस्कृति में हो रहे परिवर्तन से रू–ब–रू हुआ जाए तभी मानवता के सुखद भविष्य के लिए एक बेहतर विश्व का सपना देखा जा सकता है।

उपसंहार

उपसंहार

हिन्दी में राजनीतिक जीवन से जुड़े बहुत कम उपन्यास लिखे गए। राजनीति और राजनीतिक जीवन को विषय बनाकर लिखे गए उपन्यासों में मन्नू भंडारी का 'महाभोज' एक साहसिक प्रयास है। किसी भी राजनैतिक मतवाद की छाया से मुक्त यह कथाकृति सही अर्थों में आम आदमी की पक्षधरता के साथ भ्रष्ट राजनीति की पोल खोलती है। वास्तव में यह उपन्यास हमें भारतीय जनतंत्र पर एक सार्थक बहस के लिए आमंत्रित करता है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता इस बात में हैं कि इस लोकतंत्र के आधार–स्तम्भों विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और मिडिया इन चारों के मुखौटों को हटाकर इनके असली चेहरे को पाठकों के समक्ष ला खड़ा किया है।

किसी भी उपन्यास की श्रेष्ठता उसकी भाषा की सर्जनात्मकता पर निर्भर होती है। 'महाभोज' इस दृष्टि से एक बहुत ही उल्लेखनीय उपन्यास हैं। नाटकीय उपन्यास होने के कारण इस की भाषा तनाव एवं व्यंग्य से लबरेज है। राजनीतिक पात्रों की तनावपूर्ण मानसिकता उनकी संवादों से भलीभाँति व्यक्त होती है। यहाँ तक कि जो पात्र अपने अन्दरूनी तनावों को पी जाने की क्षमता से युक्त हैं वे भी अपने स्वगत चिन्तन में तनाव की भाषा से बच नहीं पाते। गहन अर्थ से भरे मौन की भाषा का भी बहुत सफल उपयोग मन्नू भंडारी ने किया है। महाभोज की ये विशेताएँ इसे संभावनापूर्ण परन्तु चुनौति–भरा अनुवाद पाठ के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

'महाभोज' का अंग्रेज़ी अनुवाद रूथ वनिता ने The Great Feast नाम से किया है। शिक्षा जगत में इनकी प्रसिद्धी एक कवयित्री, लेखिका, संपादिका और अनुवादिका के रूप में है। रूथ वनिता ने अपनी योग्यता व अनुभवशीलता के बल पर जिस तरह महाभोज का अंग्रेज़ी अनुवाद किया है वह उत्कृष्ट तो नहीं परन्तु सराहनीय है। महाभोज में व्यंग्य का उपयोग भरपूर तौर पर और सर्जनात्मकता के साथ हुआ है। व्यंग्य नाटकीय उपन्यास के रूप में महाभोज की सफलता का

सबसे बड़ा आधार हैं, परन्तु यही आधार इसके अंग्रेज़ी अनुवाद के विफलता का कारण बन जाता है। इस उपन्यास का पहला ही वाक्य "लावारिस लाश को गिद्ध नोच-नोच कर खा जाते हैं।" पाठक को यह वाक्य पूरे पैराग्राफ के रूप में प्राप्त होता है। कदाचित इसे एक पूरे परिच्छेद के रूप में पढ़ा जा सकता है। यह पैराग्राफ शब्दों से नहीं मौन से निर्मित होता है। इसका पाठ भिन्न-भिन्न पाठकों के लिए भिन्न-भिन्न हो सकता हैं। इस वाक्य के 'लावारिश','लाश','गिद्ध', आदि कर्म/कर्त्ता और 'नोच-नोच कर खाना' क्रियापद व्यंग्यार्थ की अनेक सम्भावनाओं से युक्त है। इस वाक्य से एक साथ ही करूणा, जुगुप्सा और नृशंसता के भाव व्यक्त होते हैं। और पाठक को अपने प्रभाव में ले लेते है। परन्तु यही बात इसके अंग्रेज़ी अनुवाद में नहीं मिलता। रूथ वनिता द्वारा किया गया अनुवाद "Valtures devour the kinless dead."..... मूल सा प्रभाव उत्पन्न कर पाने में असमर्थ रहा है। वनिता जी ने जिस तरह से इसका शाब्दिक अनुवाद किया है, वह इसके मूल में अभिव्यक्त व्यंग्य एवं लय को पकड़ पाने में विफल रहा है। यह विफलता पूरे उपन्यास में व्याप्त है। इसी कारण इसे पढ़ने पर मूल जैसा आनंद की प्राप्ति नही हो पाती है। इसके अनुवाद में कहीं ज्यादा रचनात्मकता की जरूरत थीं, जिसकी पूर्ति रूथ वनिता नहीं कर पायी हैं। परन्तु जहाँ उपन्यास सीधा एवं सपाट है, वहा रूथ वनिता का अंग्रेज़ी अनुवाद उत्कृष्ट है। रूथ वनिता के अनुवाद की एक विशेषता यह भी हैं कि वे मूल से कभी भी भटकी नहीं है। भले ही वो मूल सा प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाई हैं, परन्तु मूल उपन्यास के तथ्य को, उसके अर्थ और स्पष्ट कर पाने में सफल रही हैं।

मूल पाठ में आए मुहावरों का सार्थक अनुवाद करने में में भी अनुवादिका पूरी तरह सक्ष्म नहीं रही, मुहावरों के सन्दर्भ में किया गया उक्त अनुवाद शब्दा अनुवाद का प्रभाव डालता है। प्रस्तुत अनुवाद शब्दानुवाद एवं कृत्रिम अनुवाद अधिक दिखाई देता है।

'महाभोज' ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है अतः इसमें आए ठेठ सामाजिक सांस्कृति शब्दों का अनुवाद भी अनुवादिका के लिए समस्या जनक रहा है। भारतीय समाज से परिचित होने के कारण रूथ वनिता उन शब्दों के सामान्य अर्थ से तो परिचित हैं, परन्तु सन्दर्भ विशेष के कारण उन शब्दों से व्यंजित हो रहे विशेष अर्थ को अनुवाद में व्यक्त कर पाने में असफल रही हैं। रूथ वनिता के सामाजिक सांस्कृतिक शब्दों पर कमजोर पकड़ उस सामाजिक तनाव या यथार्थ को व्यक्त कर पाने में बाधक हैं, जो मूल पाठ को प्रभावी बना रहा है। महाभोज में व्यक्त सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष को उसी व्यंजना एवं तनाव के साथ व्यक्त न कर पाने के कारण इस अनुवाद की उपादेयता भी खण्डित होती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि अनुवादिका की सफलता को निर्विवाद तौर पर नहीं स्वीकारा जा सकता। त्रुटियाँ ऐसे क्षेत्र में की गयी हैं, जिनसे अनुवाद कामचलाऊ बन कर रह जाता है। अनूदित कृति को पढ़ने पर पाठक पूर्ण रूप से मूल कृति का प्रभाव ग्रहण करने में असर्मथता का अनुभव करता है। अतः अनुवाद का साधारण रूप ही हमारे सामने आ पाता है।

ग्रन्थानुक्रमणिका

आधार ग्रंथ

मन्नू भंडारी : महाभोज
राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण, 2005

अनूदित ग्रन्थ

The Great Feast : Ruth Vanita
Orient Longman Private Limited
New Delhi, 2002

सहायक ग्रंथ

1. कमलेश्वर -- : नई कहानी की भूमिका
शब्दालंकार प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1978

2. कपूर बदरीनाथ : हिन्दी पर्यायवाची कोश
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2000

3. चुघ, सत्यपाल : प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की भूमिका
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण, 1962

4. चंद्र, कृष्ण कुमार बिस्सा : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना
दिनमान प्रकाशन, दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1980

5. जैन, निर्मला : आधुनिक हिन्दी साहित्य : मूल्य और मूल्यांकन
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1980

6. तिवारी, नित्यानंद : आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध,
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1982

7. दूबे, अभय कुमार (संपा.) : लोकतंत्र के सात अध्याय
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,

प्रथम संस्करण, 2002

8. नगेन्द्र (संपा.) : अनुवाद विज्ञान
हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1993

9. टी. बी. बॉटोमर : समाजशास्त्र, अनुवादक – गोपाल प्रधान
ग्रंथशिल्पी, 2004,

10. पालीवाल, सूरज (संपा.) : महाभोज का महत्त्व
सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण, 2004

11. प्रेमचंद : कुछ विचार
चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर,
प्रथम संस्करण, 1995

12. फॉक्स, रैल्फ : उपन्यास और लोकजीवन
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,
संस्करण, 1980

13. भंडारी, मन्नू : एक इंच मुस्कान (उपन्यास)
राजपाल एंड संस, दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1961

14. भंडारी, मन्नू : आपका बंटी (उपन्यास)
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली,
तेरहवां संस्करण, 1990

14. भंडारी, मन्नू : स्वामी (उपन्यास)
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1982

15. भंडारी, मन्नू : कलवा (उपन्यास)
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 2000

16. भंडारी, मन्नू : मैं हार गई (उपन्यास)

अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1957

17. भंडारी, मन्नू : तीन निगाहों की एक तस्वीर (कहानी संग्रह)
श्रमजीवी प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण, 1959

18. भंडारी, मन्नू : यही सच है (कहानी संग्रह)
श्रमजीवी प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण, 1966

19. भंडारी, मन्नू : एक प्लेट सैलाब (कहानी संग्रह)
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1968

20. भंडारी, मन्नू : त्रिशंकु (कहानी संग्रह)
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1978

21. भंडारी, मन्नू : एक कहानी यह भी
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2007

22. मेघ, रमेश कुन्तल : आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1965

23. मदान, इन्द्रनाथ : हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख
लिपि प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1973

24. मधुरेश : हिन्दी उपन्यास का विकास
सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण, 1998

25. मिश्र, रामदरश एवं महीप सिंह (संपा) : समकालीन साहित्य चिंतन
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1986

26. यादव, राजेन्द्र : प्रेमचंद की विरासत तथा अन्य निबंध

अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1981

27. यादव, राजेन्द्र : औरों के बहाने
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1985

28. राजूरकर, अनीता : कथाकार मन्नू भंडारी
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1987

29. राय, गोपाल : उपन्यास की पहचान : महाभोज
अनुपम प्रकाशन, पटना
प्रथम संस्करण, 2002

30. राय, गोपाल : गोदान–नया परिप्रेक्ष्य
अनुपम प्रकाशन, पटना
प्रथम संस्करण, 1973

31. राय, विवेकी : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम्य जीवन
लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद, संस्करण, 1974

32. रेणु, फणीश्वनाथ : मैला आँचल
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2003

33. रत्तू, कृष्ण कुमार : अनुवाद का नया चेहरा
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
2003

34. राम अहूजा : भारतीय सामाजिक व्यवस्था
रावत पब्लिकेशन, 2005

35. वाजपेयी, अशोक (संपा.) : प्रतिनिधि कविताएँ
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1984

36. वर्मा, लक्ष्मीकांत : नई कविता के प्रतिमान
भारतीय प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद
संस्करण, संवत् 2014

37. वंशीधर एवं राजेन्द्र मिश्र : मन्नू भंडारी का सृजनात्मक साहित्य
नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल,
प्रथम संस्करण, 1983

38. शुक्ल, रामचंद्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास
काशी नागरीप्रचारिणी सभा,
वाराणसी, संवत् 1986

39. शर्मा, अमित कुमार : भारतीय समाज की संरचना
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 2003

40. शर्मा, के. एल. : भारतीय समाज
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 2003

41. शर्मा, ब्रजमोहन : कथा लेखिका मन्नू भंडारी
कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1991

42. शर्मा, रामविलास : प्रेमचंद और उनका युग
मेहर चंद मुंशीराम प्रकाशन,
दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1952

43. शर्मा, राजमणि : अनुवाद विज्ञान
हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला, 2004

43. श्यामा चरण दुबे : भारतीय समाज
एन.बी.टी, 2006

44. शाही, सदानन्द (संपा.) : महाभोज : मूल्यांकन के परिप्रेक्ष्य
अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001

45. श्रीनिवास, एम. एन. : भारत में सामाजिक परिवर्तन
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

46. श्रीवास्तव, परमानन्द : उपन्यास का यथार्थ और सृजनात्मक भाषा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1976

47. सिंह, त्रिभुवन : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सं. 1965

48. सिंह, त्रिभुवन : हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी,
प्रथम संस्करण, 1973

49. सिंह, नामवर : कहानी : नई कहानी
लोकभारती प्रकाशन

पत्र–पत्रिकाएँ -

आजकल – संपादक : प्रवीनण उपाध्याय, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली

आलोचना (त्रैमासिक) – प्रधान संपादक : नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

इतिहास बोध – संपादक : लाल बहादुर वर्मा, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद
बहुवचन – प्रधान संपादक : अशोक वाजपेयी, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
हंस– संपादक : राजेन्द्र यादव, अक्षर, प्रकाशन, नई दिल्ली

बेब संदर्भ

1. www.google.com
2. www.penguingroup.com
3. www.contemporarywriters.com
4. www.wikipedia.com